अभिनव कृषि

वर्ष-7 अंक-3 सितम्बर, 2025 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

रबी फसल विशंषांक: रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)-324001

FMC | An Agricultural Sciences Company

सोयाबीन में फसल सफलता की राह...

हमारी उत्पाद श्रंखला के साथ

Website: https://ag.fmc.com/in/en

https://www.facebook.com/FMCinIndia/

https://www.youtube.com/fmcindiachannel

Available on IOS and Android

Customer Care No.: 1800 102 6545
E-mail : ask@fmc.com

FMC, the FMC logo, Authority NXT, Tuventa, Coragen, Galaxy NXT and Galaxy are trademarks of FMC Corporation and/or an affiliate. ©2025 FMC Corporation. All rights reserved

अभिनव कृषि

वर्ष-7 अंक-3 सितम्बर, 2025 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
माननीय कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. योगेन्द्र कुमार मीना
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान विज्ञान)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. घनश्याम मीना
आचार्य (पशुपालन विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. एच.पी. मेघवाल
सह. आचार्य (कीट विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. डी.एल. यादव
सहा. आचार्य (पादप रोग विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. अरविन्द नागर
सहा. आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–सपादक

डॉ सेवाराम रूण्डला
विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.एस.के. जैन
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आशुतोष मिश्रा
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. वीरेन्द्र सिंह
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. एन.एल. मीणा
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, हिण्डौली

डॉ. मुकेश चन्द गोयल
निदेशक, पी.एम.एण्ड ई.

डॉ. महेन्द्र सिंह
निदेशक, मानव संसाधन विकास

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 50 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 200 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1500 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 7,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iv)	प्रथम या अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 4,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3000/-
(vii)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 5,000/-
(viii)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,500/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक : DEE, Agriculture University, Kota
बैंक : ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या : 687801700345
IFSC : ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। इस पत्रिका में दिये गये विज्ञापनों के उत्पादों आदि की कृषि विश्वविद्यालय, कोटा किसी प्रकार की अनुशंसा नही करता है।

डॉ. प्रताप सिंह
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

रबी फसलों की उन्नत खेती आज वैज्ञानिक तकनीकों के प्रभावी उपयोग पर आधारित है। उन्नत एवं उच्च उत्पादक किस्मों का चयन, समय पर बुवाई, संतुलित एवं समन्वित पोषण प्रबंधन, मिट्टी की स्वास्थ्य जाँच पर आधारित उर्वरक प्रयोग, आधुनिक सिंचाई पद्धतियाँ जैसे ड्रिप व स्प्रिंकलर, साथ ही कीट एवं रोगों की समेकित प्रबंधन तकनीक अपनाकर किसान न केवल अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि लागत घटाकर गुणवत्तापूर्ण उपज भी सुनिश्चित कर सकते हैं। साथ ही फसल चक्र, अवशेष प्रबंधन और यंत्रीकरण जैसी वैज्ञानिक तकनीकें खेती को अधिक टिकाऊ एवं पर्यावरण संतुलित बनाती हैं। ऐसे समय में जब कृषि क्षेत्र को आत्मनिर्भर भारत के लक्ष्य तक पहुँचाने की चुनौती है, किसानों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही सफलता की कुंजी है। अतः कृषक बंधुओं, कृषि उद्यमियों और युवा कृषकों से मेरा विनम्र आग्रह है कि वे वैज्ञानिक तकनीकों को अपनी खेती का अभिन्न अंग बनाएँ। इससे खेती अधिक लाभकारी, टिकाऊ और बाजारोन्मुख होगी। निश्चय ही यह पहल किसानों की आय वृद्धि, खाद्य सुरक्षा एवं कृषि की स्थिर प्रगति में मील का पत्थर सिद्ध होगी।

किसान भाईयों के लिए यह समय बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें खरीफ फसलों की कटाई एवं रबी की फसलों विशेषकर गेहूँ, चना, सरसों की बुवाई की तैयारियों में जुटे होगें। पत्रिका के प्रस्तुत इस अंक में कृषि सम सामयिकी विषयों पर आलेखों जैसे सरसों, गेहूँ एवं जौ की उन्नत उत्पादन एवं प्रबंधक तकनिकीयां, रबी फसलों के प्रमुख कीट एवं व्याधियों की रोकथाम, रबी फसलों मे जल प्रबंधन के विभिन्न आयाम, फसलों में यांत्रिकरण का महत्व इत्यादि को सम्मिलित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का यह अंक किसानों, कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं, हितधारकों एवं पाठकों हेतु अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। मैं सभी पाठकों से इस पत्रिका को और अधिक कृषक उपयोगी बनाने के लिए अपने विचार प्रेषित करने का आग्रह करता हूं। इस पत्रिका के सभी पाठकों, लेखकों, पत्रिका के सम्पादक मण्डल एवं सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाईयां एवं शुभकामनाऐं देता हूँ।

जय हिन्द !

(प्रताप सिंह)

अभिनव कृषि

वर्ष-7 अंक-3 सितम्बर, 2025

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	राई –सरसों के बेहतर उत्पादन के लिये उन्नत तकनीक मोहन लाल दौतानियाँ एवं राम लाल चौधरी	1–3
2.	राजस्थान में उच्च गुणवत्ता व पैदावार के लिए गेहूं की उन्नत किस्में मेघना सिंह राजोतिया, उदिती धाकड़ एवं प्रियंका	4–5
3.	हाड़ोती क्षेत्र में रबी फसलों का उन्नत बीज उत्पादन : किसानों के लिए मार्गदर्शिका राजेश कुमार शर्मा, सागर कुमार शर्मा, नीरज पाराशर और राजेश कुमार	6–9
4.	उन्नत बीज उत्पादन में यंत्रीकरण एवं महत्व राजेश कुमार शर्मा, सागर कुमार शर्मा एवं योगेंद्र शर्मा	10–12
5.	लवणीय क्षेत्रों में जौ की खेती, टिकाऊ कृषि की ओर एक कदम नूपुर शर्मा, संतोष झाझड़िया एवं किरण मीणा	13–16
6.	शून्य कृषण विधि द्वारा गेहूँ उत्पादन शालिनी मीणा, उदिती धाकड़, आर. के. मीणा और वर्षा गुप्ता	17–18
7.	चना उत्पादन में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबंधन प्रणाली पूनम फौजदार, खजान सिंह एवं पी.के.पी. मीना	19–20
8.	रबी फसलों का एकीकृत रोग प्रबंधन दिनेश चंद, कमलेश चरपोटा, ज्योति झिरवाल एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा	21
9.	नैनो डीएपीः रबी फसलों की उपज बढाने में सहायक ए.पी. सिंह, लाला राम एवं सुधीर मान	22
10.	सिंचाई की नवीन तकनीक ''ऐब एण्ड फ्लो'' विधिः सब्जी उत्पादन हेतु स्वचालित पोषक तत्व वितरण प्रणाली राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव	23–24
11.	कूँड सिंचित उभरी क्यारी (फर्ब) प्रणाली : जलवायु समुत्थोशीलन गेहूँ उत्पादन की उन्नत विधि उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, के.एम.शर्मा एवं चमन कुमारी जादौन	25–26
12.	प्याज की वैज्ञानिक खेती एवं फसल सुरक्षा वैशाली नागर, प्रवीण कुमार चचैया, राकेश कुमार यादव एवं अरविन्द नागर	27–28
13.	बीहड़ प्रभावित क्षेत्रों के लिए बागवानी प्रणालियाँ एच.आर. मीना, टी.एस. चैत्रा, मीनाक्षी मीना और शाकिर अली	29–31
14.	फेरोमोन व लाइट ट्रैप : रबी फसलों के सच्चे प्रहरी रत्नाकर पाठक एवं हिमेन्द्र राज रघुवंशी	32–33

राई -सरसों के बेहतर उत्पादन के लिये उन्नत तकनीक

मोहन लाल दौतानियाँ एवं राम लाल चौधरी
भाकृअनुप–भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर–321303 (राज.)

भारत की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है तथा देश का एक बड़ा भू–भाग राई–सरसों उत्पादन में अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। इन राज्यों में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा एवं गुजरात शामिल हैं जिनमें कुल क्षेत्रफल का 80 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन का 84 प्रतिशत भाग आता है। विश्व स्तर पर क्षेत्रफल एंव उत्पादन की दृष्टि से भारत कनाडा, चीन के बाद तीसरे स्थान पर, लेकिन प्रति हैक्टर उत्पादन की तुलना करें तो हमारी उत्पादकता केवल दो–तिहाई है। यूरोपीयन देशों में लम्बी फसल अवधि एंव आनुवांशिक विविधता अच्छे उत्पादकता के मुख्य घटक है। भारत में मुख्तया *ब्रैसिका जुंसिया* तथा अन्य देशों में *ब्रैसिका* नेपस उगाई जाती है जो कि खाद्य प्रयोग के साथ साथ जैव ईधन के रूप में भी उपयोग मे लाळ जाती है।

विभिन्न प्रकार की उन्नत किस्में तथा अधिक उत्पादन के लिए विभिन्न उन्नत तकनीकों का विगत वर्षो में अनुसंधान हुआ तथा किसानों के खेतों पर इन प्रजातियों एवं उन्नत तकनीकों का प्रदर्शन किसानों की आय को बढ़ाने में मील का पत्थर साबित हो रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर राई–सरसों की पैदावार को बढ़ाने में भाकृअनुप–भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर कटिबद्ध है जो देश के विभिन्न स्थानों पर राई–सरसों समन्वित कार्यक्रम के तहत मृदा व जलवायु के अनुसार किस्मों का विकास करता है तथा पादप पोषक तत्व उपयोग दक्षता, जल उपयोग दक्षता, समन्वित रोग व कीट प्रबन्धन, पादप प्रजनन द्वारा विभिन्नता पैदा करना इत्यादि शामिल है। इन तकनीकों को किसानों तक पहुचाने के लिए संस्थान समय–समय पर किसान–वैज्ञानिक संवाद, प्रक्षेत्र दिवस, किसान एवं प्रसार कर्मियों का प्रशिक्षण, सरसों विज्ञान मेला एवं प्रदर्शनी आयोजित करता रहता है।

राई–सरसों तेल की गुणवता व उपयोगिता

विश्वभर में राई–सरसों की पैदावार, तेल की मात्रा व तेल में उपस्थित पोषक तत्वों को बढ़ाने पर अनुसंधान जारी है। खाद्य प्रदार्थो में उपस्थित तेलों को शरीर में वसीय अम्लों की पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है। भारतीय सरसों में संतृप्त वसीय अम्लों (पालमीटिक व स्टेरिक अम्ल) की मात्रा 8 प्रतिशत तथा एकल असंतृप्त वसीय अम्ल *(ओलइक, आइकोसेनोइक, इरूसिक अम्ल)* की मात्रा 70 प्रतिशत तथा बहु असंतृप्त वसीय अम्ल (लीनोइक व लीनोलेइक) की मात्रा 22 प्रतिशत के लगभग पाई जाती है। ये वसीय अम्ल स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होते है। भारतीय सरसों में कुल वसीय अम्लों में 40–57 प्रतिशत इरूसिक अम्ल पाया जाता है जो कि स्वास्थ्य के लिए अच्छा नही हैं। अतः वैज्ञानिकों की टीम अनुसंधान द्वारा इस वसीय अम्ल की मात्रा को कम करने के लिए प्रयासरत हैं और इस दिशा में कई किस्में भी विकसित की गयी है जैसे पूसा करिश्मा, पूसा सरसों–21 व पूसा सरसों–22, आर एल सी– 1, पूसा सरसों –24 एंव आर एल सी– 2, पी.डी.जेड़–1, पूसा सरसों–31 इत्यादि।

इसके अलावा सरसों के तेल में अधिक मात्रा में ऑमेगा–3 पाया जाता है जो कि कोलेस्ट्रोल व ट्रान्स वसा से युक्त होता है। इसलिए सरसों के तेल को अन्य वानस्पतिक तेलों (सुरजमुखी, सोयाबीन, मक्का तेल) में ऑमेगा–3 वसीय अम्लों की मात्रा को बढ़ाने के लिए मिलाया जाता है सरसों के तेल में पाई जाने वाली एक विशेष प्रकार की सुगन्ध के कारण इसकी माँग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक है। इसका उपयोग कई प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पादों, सुपरफूड़ तथा सीधे उपयोग वाली खाद्य सामग्रियों में बहुतायत से किया जाता है।

भारत में सरसों का उत्पादन क्षेत्र अधिक है लेकिन उत्पादकता फ्रांस, जर्मनी, चीन, कनाडा से भी बहुत कम हैं। भारतवर्ष में सरसों की उत्पादकता कम होने के कारणों को तालिका 1 में विस्तृतरूप से वर्णित किया गया है।

तलिका 1 सरसों उत्पादन की प्रमुख बाधाऐं।

राज्य	प्रमुख बिन्दु
राजस्थान	• लवण से प्रभावित सिंचाई के लिए खारा पानी • कम और अनियमित वर्षा, अपर्याप्त सिंचाई/सूखा प्रभावित क्षेत्र • बुवाई के समय उच्च तापमान • पड़ती सरसों फसल चक्र • उर्वरकों का असंतुलित उपयोग • प्रमुख जैविक बाधाएं: सफेद रोली, तना गलन, ओरोबैंकी, चैंपा और पेंटेड बग
उत्तर प्रदेश	• लवणता से प्रभावित मिट्टी और सिंचाई के लिए खारा पानी • बुवाई के समय उच्च तापमान • बुवाई की छिटकवॉ विधि • देरी से बुवाई • उर्वरकों का असंतुलित उपयोग • प्रमुख जैविक बाधाएं: सरसों मॉहु पेंटेड बग, सफेद रोली, तना गलन एवं ओरोबैंकी
हरियाणा	• धान–गेहूँ फसल चक्र, मिट्टी के स्वास्थ्य और परिस्थितिक संतुलन के लिए हानिकारक • कम और अनियमित वर्षा • लवणता से प्रभावित मिट्टी और सिंचाई के लिए खारा पानी • बुवाई के समय उच्च तापमान • उर्वरकों का असंतुलित उपयोग • प्रमुख जैविक बाधाएं: सरसों मॉहु पेंटेड बग, सफेद रोली, तना गलन एवं ओरोबैंकी।
मध्यप्रदेश	• बेहतर किस्मों का कम फैलाव/ चलन • सिंचाई सुविधाओं/नमी का अभाव • विलंबित बुवाई • पौध संरक्षण उपायों को न अपनाना • कम और अनिश्चित वर्षा, बुवाई के समय उच्च तापमान • बड़े इलाके में पड़ती सरसों फसल चक का प्रचलन • खरपतवार समस्या • उर्वरकों का असंतुलित उपयोग • प्रमुख जैविक बाधाएं: सरसों मॉहु पेंटेड बग, सफेद रोली, तना गलन एवं ओरोबैंकी
गुजरात	• लवणता से प्रभावित मिट्टी • कम और अनिश्चित वर्षा, सिंचाई जल की अनुपलब्धता • उच्च बीज दर का उपयोग • उर्वरक का असंतुलित उपयोग और सल्फर पोषक तत्व का बहुत कम उपयोग • प्रमुख जैविक बाधाएं: सरसों मॉहु पेंटेड बग, सफेद रोली, तना गलन एवं ओरोबैंकी

राज्य	प्रमुख बिन्दु
पश्चिम बंगाल	• खरीफ (अमान) धान की देर से कटाई के कारण सरसों की देर से बुवाई • विशेषरूप से चावल और पड़ती भूमि में बुवाई के समय अपर्याप्त नमी • पोषक तत्वों का असंतुलित प्रयोग • बाढ से प्रभावित इलाकें में देरी से बुवाई • प्रमुख जैविक बाधाएं: सरसों मॉहु, पेंटेड बग, सफेद रोली, तना गलन एवं ओरोबैंकी

भाकृअनुप–भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान में निम्नलिखित मुख्य अनुसंधान गतिविधियु पर कार्य चल रहा है।

- आनुवंशिक विविधता तथा इस विधियता का अनुसंधान में उपयोग ।
- संकर किस्मों को विकसित करना।
- तापमान सहनशील सरसों की किस्मों का विकास।
- सरसों में होने वाली बिमारियों जैसे तना गलन, सफेद रोली इत्यादि के लिए उपयुक्त शस्य क्रियाअुं एवं रसायनिक दवाईयों का संयोजन तैयार करना।
- सरसों उत्पादन बढ़ाने के लिए मृदा स्वास्थ्य में सुधार।
- विभिन्न तकनीकों द्वारा सरसों में जल उपयोग क्षमता को बढ़ाना ।
- जल व मृदा प्रदूषित भूमि को सरसों की उपयुक्त किस्मों द्वारा कृषि योग्य बनाना।
- सरसों की अच्छी पैदावार के लिए रसायन खादों की मात्रा की अनुशंसा तथा मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव की जांच करना।
- जैव प्राद्योगिकी द्वारा सरसों की नव किस्मों में विशेष गुण को सम्मिलित करना।

भाकृअनुप–भारतीय सरसों अनुसंधान संस्थान, भरतपुर प्रतिवर्ष सितम्बर माह में बीज पखवाड़े का आयोजन करता है जिसमें किसानों को सरसों की खेती से सम्बधित वैज्ञानिक जानकारी व रियायती दरों पर सरसों कि उन्नत किस्मों का बीज उपलब्ध कराया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में सरसों विज्ञान मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें देश के विभिन्न जगहों से किसान सम्मिलित होते है। संस्थान द्वारा किसानों को प्रदान की जाने वाली निम्न उन्नत किस्में हैं (चित्र 1)।

किस्में	उपज (क्विंटल /हे.)
आर एच 749	24.0–26.0
राधिका	17.0–19.0
ब्रजराज	17.0–19.0
रूकमणी	22.0–26.0
एन आर सी डी आर 2	22.0–26.0
एन आर सी एच बी 101	20.0–22.0
डी आर एम आर आई जे 31 (गिरिराज)	22.0–27.0
आर एच 406	22.0–24.0
डी आर एम आर 150–35	15.0–18.0
एन आर सी एच बी 506 (हाइब्रिड़)	22.0–25.0
एन आर सी वाई एस 05–02 (पीली सरसों)	12.0–17.0

❖ किस्मों की उपज जलवायु परिस्थिति एवं सस्य कियाओं पर निर्भर है।

चित्र 1 संस्थान द्वारा किसानों को उपलब्ध की जाने वाली किस्में ।

राई–सरसों के उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीकें

उन्नतशील किस्मों एवं सस्य तकनिकें को अपनाकर 25 से 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर सरसों की पैदावार आसानी से ली जा सकती है। किसान निम्न् बातों का ध्याान रखकर राई–सरसों का उत्पादन बढ़ा सकते हैं।

क्या करें :–

- सरसों की बुवाई 10–25 अक्टूबर तक करें।
- प्रति हैक्टेयर 2.5 से 3.5 किलोग्राम बीज का प्रयोग करें।
- बीजोपचार के लिए मेटालेन्जील 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज अथवा सफेद रोली रोग का प्रकोप रहा हो तो एप्रोन–35 एसडी 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।
- असिंचित फसल में प्रति हैक्टेयर 90 किलोग्राम यूरिया, 125 किलोगग्रम सिंगल सुपरफॉस्फेट व 30 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करें। असिचित फसल में सभी पोषक तत्वों की पूरी मात्रा को बुवाई के समय ही प्रयोग करें।
- सिंचित फसल में 180 किलोग्राम यूरिया, 250 किलोग्राम सिंगल सुपरफॉस्फेट व 50 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश की आवश्यकता होती है। सिंचित स्थितियों में यूरिया की आधी मात्रा व सिंगल सुपरफॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा को बुवाई से पूर्व तथा शेष आधी यूरिया को पहली सिंचाई करने के बाद फसल को देनी चाहिए।
- बुवाई से पहले 200–250 किलोग्राम जिप्सम प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें।
- बोरॉन की कमी वाली मृदाओं में 10 किलोग्राम बोरेक्स प्रति हैक्टेयर की दर से खेतों में बुवाई से पूर्व प्रयोग करें।
- सिंचित क्षेत्रों में कतार से कतार की दूरी 45 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 15 से 20 सेमी रखें।
- बुवाई के 20–25 दिन बाद पौधों की उचित दूरी के लिये विरलीकरण करें तथा 25–30 दिन बाद कम से कम एक बार गुडाई अवश्य करें।
- फसल में पहली सिंचाई 35 से 40 दिन के बाद करें। आवश्यकता होने पर दूसरी सिंचाई फली में दाना बनते समय करें।
- पेन्टेड बग या चितकबरा कीट की रोकथाम हेतु 20–25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से 1.5 प्रतिशत क्यूनालफॉस चूर्ण का भुरकाव करें।
- तना गलन से बचाव के लिये कार्बेन्डाजिम (बाविस्टीन) 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिडकाव बुवाई के 65 से 70 दिन पर करना चाहिये।
- थायोयूरिया 500 ग्राम 500 लीटर पानी में तैयार कर अथवा डायमिथाईल सल्फोआक्साइड 2 मिली. प्रतिलीटर पानी की दर से फूल आने के समय एवं दूसरा छिडकाव फलियॉ बनने के समय करें। इससे फसल का पाले से भी बचाव होता है।
- सरसों की अच्छी पैदावार के लिए 75 प्रतिशत फलिया पीली हो जाये तख्री ही फसल की कटाई करें।

क्या ना करें :–

- देरी से बुवाई व अधिक बीज का प्रयोग न करें।
- अनुशंसित मात्रा से अधिक यूरिया का प्रयोग नहीं करें।
- कतार से कतार और पौधे से पौधे की दूरी नजदीक न रखें।
- फसल में गहरी सिंचाई व 20 दिसम्बर से 15 जनवरी के मध्य सिंचाई न करें।

उपरोक्त दशाओं को देखते हुए शुळक व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में ख्री राई–सरसों के उत्पादन पर विचार करके अच्छी उपज ले सकते हैं। इस फसल की लागत कम है तथा बाजार मूल्य अन्य फसलों की तुलना में अधिक है इसके अलावा यदि विपरीत जलवायु में भी उचित शस्य व मृदा प्रबन्धन करें तो यह फसल अच्छा उत्पादन देती है जिससे कि किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा देश की आर्थिक विकास की रफ्तार भी इन क्षेत्रों में बढ़ेगी।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

राजस्थान में उच्च गुणवत्ता व पैदावार के लिए गेहूं की उन्नत किस्में

मेघना सिंह राजोतिया, उदिती धाकड़ एवं प्रियंका
कृषि महाविद्यालय, सीसीएस एचएयू, हिसार एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा

राजस्थान, भारत का एक प्रमुख कृषि आधारित राज्य है, जहां गेहूं रबी सीजन की सबसे महत्वपूर्ण फसलों में से एक है। राजस्थान में गेहूं की खेती लगभग 30 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जो देश के कुल गेहूं क्षेत्र का लगभग 10% है। वित्तीय वर्ष 2022 में, राज्य में 10 मिलियन मीट्रिक टन से अधिक गेहूं का उत्पादन हुआ, जो राष्ट्रीय उत्पादन का लगभग 9.36% है। गेहूं की खेती न केवल किसानों की आजीविका का आधार है, बल्कि यह राज्य और देश की खाद्य सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। हालांकि, राजस्थान की जलवायु और मिट्टी की विविधता के कारण, गेहूं की अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए उन्नत किस्मों का चयन करना आवश्यक है। ये उन्नत किस्में न केवल अधिक उपज देती हैं, बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता और कम समय में पकने की विशेषता के कारण किसानों के लिए लाभकारी हैं।

राजस्थान में गेहूं की खेती की चुनौतियां

राजस्थान में गेहूं की खेती कई चुनौतियों का सामना करती है, जो उत्पादन और उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। राज्य की शुष्क और अर्ध–शुष्क जलवायु के कारण सीमित जल संसाधन एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि गेहूं की फसल को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है। मिट्टी की उर्वरता में कमी और रेतीली मिट्टी का प्रभुत्व पोषक तत्वों के प्रबंधन को जटिल बनाता है। इसके अलावा, खरपतवारों का प्रकोप उपज को गंभीर रूप से प्रभावित करता है किस्से गेहूं की उपज में 37.0 से 57.1% तक की कमी हो सकती है। कई प्रकार के रोग और कीटों का हमला भी फसल को नुकसान पहुंचाता है। जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, और देर से बुवाई की समस्या भी उपज को प्रभावित करती है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए बेहतर कृषि पद्धति के साथ साथ उन्नत व उचित किस्मों का चयन भी आवश्यक है।

राजस्थान के लिए गेहूं की उन्नत किस्में

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और अन्य कृषि संस्थानों ने राजस्थान की जलवायु और मिट्टी के अनुकूल कई उन्नत गेहूं की किस्में विकसित की हैं। नीचे कुछ प्रमुख किस्मों का विवरण दिया गया है, जो राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं।

राज 4037 – गेहूं की यह किस्म 72 से 75 सेन्टीमीटर ऊँची अधिक फुटान वाली व रोली रोधक नई किस्म है। यह अधिक गर्म जलवायु को सहन करने की क्षमता रखती है और अधिक उपज देती है। यह सामान्य बुवाई सिंचित के लिये उपयुक्त है एवं मजबूत तने के कारण आड़ी नहीं गिरती है। इसके पकने का समय 115 से 120 दिन है तथा इसकी उपज 40 से 45 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। इसके एक हजार दानों का वजन 42 से 44 ग्राम तक होता है।

राज 4120– गेहूं की यह किस्म 79 से 94 सेन्टीमीटर ऊँचाई, अधिक फुटान वाली व रोली रोधक विशेष रूप से यूजी 99 बाली रोली रोधक क्षमता रखने वाली नई किस्म है। यह सामान्य बुवाई व सिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। मजबूत तने के कारण आड़ी–तिरछी नहीं गिरती है। इसके दाने शरबती आभायुक्त सुडौल एवं मध्यम आकार के वाले एवं एक हजार दानों का औसत वजन 38 से 41 ग्राम तक होता है। इसके पकेने का समय 107 से 124 दिन है तथा इसकी उपज 48 से 58 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। यह राजस्थान की जलवायु में अधिक उपज देने की क्षमता रखती है।

राज मोल्या रोधक–1– यह किस्म 85–90 से.मी. ऊँची, सामान्य फुटान वाली, मोल्या रोधक है। यह किस्म राजस्थान के मोल्या ग्रस्त क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त पाई गई है। यह किस्म सामान्य बुवाई, सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। इसके पकने का समय 120–125 दिन है। इसकी बालियों में शालू बहुत ही छोटे पाये जाते हैं। इसका दाना शरबती होता है, तथा इसके एक हजार दानों का वजन 40–42 ग्राम तक होता है। सामान्य बुवाई में 40–45 क्विं. प्रति हेक्टेयर तक उपज होती है।

राज. 4238 – यह 82–86 से.मी. ऊँची, अधिक फुटान वाली, रोली एवं करनाल बंट रोधक किस्म है। पौधे के तने मोटे एवं मजबूत होने के कारण यह किस्म आड़ी नहीं गिरती है। दाने शरबती आभा युक्त व मध्यम आकार के होते हैं। यह किस्म 115 से 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके 1000 दानों का वजन 38–42 ग्राम होता है। यह किस्म पछेती बुवाई में 40–48 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज दे सकती है।

डब्ल्यू.एच. 1080– गेहूं की यह किस्म 85 से 101 से.मी. ऊँची, अधिक फुटान वाली रोली रोधक किस्म है। यह राजस्थान की गर्म जलवायु को सहन करने की क्षमता रखती है और अधिक उपज देती है। बारानी एवं कम सिंचाई वाले क्षेत्रों (3–4 सिंचाई) में सामान्य बुवाई के लिये उपयुक्त है एवं मजबूत तने के कारण आड़ी नहीं गिरती है। इसके दाने शरबती, आभायुक्त, सख्त व मध्यम आकार वाले तथा एक हजार दानों का वजन 38–40 ग्राम तक होता है। इसके पकने का समय 127–133 दिन है। बारानी क्षेत्रों में इसकी उपज 32–34 क्विंटल प्रति हेक्टेयर व 4 सिंचाई की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में 40–44 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

राज 4079– गेहूं की यह किस्म 75–80 से.मी. ऊँची, अधिक फुटान वाली, गर्म तापक्रम की सहनशीलता रखने वाली एवं रोली रोधक है। यह सामान्य बुवाई व सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। मजबूत तने के कारण यह किस्म आड़ी नहीं गिरती। इसके पकने का समय 115–120 दिन है। इसकी उपज 47–50 क्विं. हेक्टेयर होती है। इसके दाने शरबती आभायुक्त, सख्त व मध्यम आकार वाले तथा एक हजार दानों का वजन 42–46 ग्राम तक होता है।

राज. 4238– गेहूं की यह किस्म चपाती वाली सिंचित क्षेत्रों हेतु देरी से बुवाई (20 दिसम्बर तक) के लिये उपयुक्त पायी गई है। यह किस्म 98–120 से.मी. ऊँची एवं अधिक फुटान वाली है। इसके दाने मोटे आकार वाले तथा एक हजार दानों का वजन 45–47 ग्राम,

110–115 दिन में पककर 35–50 क्विं. हेक्टेयर दाना उपज देती है। यह किस्म काली, भूनी व पीली रोली रोग से प्राकृतिक एवं क्ट्रिम अवस्था में प्रतिरोधी पायी गई है।

पी.बी. डब्ल्यू. 175 – गेहूं कि यह किस्म 90 से 105 से.मी. ऊँचाई, अधिक फुटान वाली व रोली रोधक क्षमता वाली नई किस्म है। यह किस्म बारानी एवं कम सिंचाई की उपलब्धता वाले (3–4 सिंचाई) क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है। इसके पकने का समय 128–132 दिन है। यह किस्म बारानी क्षेत्रों में 30–32 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है व सिंचाई की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में 38–40 क्विंटन प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है। इसके दाने शरबती, आभायुक्त, सुडौल एवं मध्यम आकार वाले एवं एक हजार दानों का औसत वजन 38 से 42 ग्राम तक होता है।

गेहूं की उन्नत किस्में व बुवाई

मिट्टी की किस्म	बुवाई की स्थिति	किसमें	बुवाई का उचित समय	बीज दर किलो / हैक्टेयर
हल्की दोमट	सामान्य बुवाई सिंचित	राज 3077, राज 3765, राज 4037, राज 4120	नवंबर के प्रथम से तीसरे सप्ताह तक	100
		राज 4079, डी बी डब्ल्यू 17	अक्टूबर के अंत से 15 नवंबर तक	100
	देर से बुवाई सिंचित	राज 4238, राज 3077, राज 4083, राज 3777, राज 3765	नवंबर के चौथे सप्ताह से दिसंबर के दूसरे सप्ताह तक	125
भारी मिट्टी	सामान्य बुवाई सिंचित	राज 1482, राज 3077, राज 3765, राज 4037, राज 4120, राज 4079, डी बी डब्ल्यू 17	नवंबर के प्रथम से तीसरे सप्ताह तक	125
	देर से बुवाई सिंचित	राज 3777, राज 3077, राज 3765, राज 4238, राज 4083	नवंबर के चौथे सप्ताह से दिसंबर के दूसरे सप्ताह तक	125
पानी के भराव वाले क्षेत्र	असिंचित	राज 3765	नवंबर के मध्य से दिसंबर के मध्य तक	125
क्षारीय व लवणीय		राज 3077	अक्टूबर के अंत से 15 नवंबर तक	125
मोल्या ग्रसित क्षेत्र	सिंचित	राज मोल्या रोधक–1	नवंबर के मध्य से चौथे सप्ताह तक	100

ध्यान रखें :

सिंचित क्षेत्रों में बीज को 5 सेंटीमीटर से अधिक गहरा न बोए। बीज का समान रूप से उपयोग करे जिससे कोई खाली जगह न रह जाए। पारम्परिक टिलेज की तुलना में, गेहूं की बुवाई जीरो टिलेज पद्धति द्वारा करने से लगभग बराबर उपज आती है। साथ–साथ लागत खर्चो में लगभग 16–20 प्रतिशत की कमी होती है। फर्ब विधि से बुवाई करने पर 33 प्रतिशत पानी व 20 प्रतिशत बीज की बचत होती है।

हाड़ोती क्षेत्र में रबी फसलों का उन्नत बीज उत्पादन : किसानों के लिए मार्गदर्शिका

राजेश कुमार शर्मा, सागर कुमार शर्मा, नीरज पाराशर और राजेश कुमार
यांत्रिक कृषि फार्म, कोटा और उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ किसानों की आय और खाद्य सुरक्षा मुख्य रूप से बीजों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यह निश्चित सत्य है कि सामान्य श्रेणी के बीज की बुवाई करके फसल से अच्छा उत्पादन नहीं लिया जा सकता, चाहे फसल में कितनी भी सिंचाई की जायें, खाद, उर्वरक व पौध संरक्षण रसायनों का उपयोग किया जाये। अच्छी फसल तब तक नहीं प्राप्त हो सकती है जब तक की अनुमोदित उन्नत किस्मों के गुणवत्तायुक्त बीज का प्रयोग नहीं किया जाये। बीज क्रय करने पर होने वाले खर्च किसी फसल की खेती की लागत का बहुत कम भाग होता है। एक कहावत है कि ''उन्नत शुद्ध बीज का मोल नहीं, गुण देखो''। किसी भी फसल से अधिक उत्पादन एवं गुणवत्तायुक्त उत्पाद के लिए उसका उन्नत शुद्ध बीज सर्वोपरि महत्व रखता है। इस एक ही कारक से उपज में काफी वृद्धि की जा सकती है। अतः यह कहना उचित होगा कि खेती को लाभकारी बनाने में बीजों का कुशल और सजग चुनाव महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न फसलों के लिए उपयोगी किस्मों के संकुल बीजों को कम से कम 2–3 वर्शो में तथा संकर बीज प्रति वर्श बदलने की जरूरत होती है।

रबी सीजन में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, मसूर एवं अलसी जैसी फसलें प्रमुख रूप से ली जाती हैं। हाड़ोती क्षेत्र (कोटा, बूंदी, बारां एवं झालावाड़) राजस्थान का उपजाऊ इलाका है, जहाँ सिंचाई के लिए चम्बल नदी एवं नहर परियोजनाएँ उपलब्ध हैं। यदि किसान उन्नत बीज उत्पादन तकनीक अपनाएँ, तो वे न केवल अपनी जरूरत पूरी कर सकते हैं बल्कि दूसरों को भी उन्नत बीज उपलब्ध करा आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। कृषि में बीज को सबसे महत्वपूर्ण इनपुट माना जाता है। कहावत है "बीज ही फसल की आत्मा है"। यदि बीज उत्तम है तो पौधे की वृद्धि, उत्पादन क्षमता और गुणवत्ता स्वतः बेहतर होती है। भारत में कुल उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत वृद्धि केवल गुणवत्तापूर्ण बीजों के उपयोग से संभव है।

उन्नत बीज उत्पादन की आवश्यकता :

- **उत्पादन बढ़ाने के लिए–** देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु उच्च उत्पादन अनिवार्य है, जिसके लिए गुणवत्तायुक्त बीज जरूरी है।
- **बढ़ती जनसंख्या की मांग पूरी करने के लिए–** बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने हेतु अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग आवश्यक है।
- **रोग एवं जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए–** रोग प्रतिरोधी एवं जलवायु सहनशील किस्मों के गुणवत्तापूर्ण बीज खेती को सुरक्षित बनाते हैं।
- **कृषि लागत घटाने के लिए–** गुणवत्तायुक्त बीज से उर्वरक, दवा और श्रम पर होने वाला व्यय कम हो जाता है।
- **आत्मनिर्भरता–** अगली फसल के लिए बीज खुद तैयार कर बाजार पर निर्भरता घटती है।
- **निर्यात एवं मूल्य संवर्धन–** गुणवत्तापूर्ण उत्पादन से अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में मदद मिलती है।

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन की तकनीक :

बीज का चयन

प्रमाणित/फाउंडेशन बीज से ही बीज उत्पादन करें। बीज शुद्ध, रोग एवं कीट मुक्त हो और अधिक अंकुरण क्षमता वाला हो। बीज का चुनाव स्थानीय जलवायु और मिट्टी के अनुसार करें। जैसे सूखा प्रभावित क्षेत्र में सूखा सहनशील किस्में और अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में जलभराव सहनशील किस्में ले। ऐसी किस्म का चुनाव करें जिसकी उपज क्षमता अधिक हो और जो पहले से प्रमाणित हो चुकी हो। हाइब्रिड किस्में अधिक उत्पादन देती हैं परंतु उनका बीज हर बार नया खरीदना पड़ता है। बीज केवल विश्वसनीय स्रोत जैसे कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, सहकारी समिति या प्रमाणित बीज कंपनी से ही लें। साथ में खरीद का बिल, टैग और बैच/लॉट नंबर संभालकर रखें आगे प्रमाणन एवं विपणन में काम आता है।

खेत का चयन व तैयारी

खेत समतल, उपजाऊ, जल निकासी युक्त और खरपतवार मुक्त होना चाहिए। उसी खेत में पिछले वर्ष वही फसल न बोई गई हो (फसल चक्र अपनाएँ)। गहरी जुताई कर पलेवा दें तथा 2–3 बार जुताई कर भुरभुरी मिट्टी तैयार करें। जैविक पदार्थ – गोबर की सड़ी खाद 8–12 टन प्रति हेक्टेयर, रसायन संतुलित खुराक में दें (फसल–विशेष सिफारिश देखें)।

पृथक्करण/अलगाव दूरी

फसल की अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए बीज उत्पादन कार्यक्रम लेने वाले खेत एवं उसी फसल जाती के अन्य खेतों के बीच न्यूनतम दूरी को पृथक्करण दूरी कहा जाता है। यह भारतीय बीज अधिनियम की मूलभूत आवश्यकता है। पर–परागणित और अक्सर पर –परागण वाली फसलों में अवांछित पराग से परागण को रोकने के लिए और स्व–परागण वाली प्रजातियों में यांत्रिक मिश्रण से बचने के लिए अलगाव दूरी आवश्यक है। पृथक्करण दूरी एक फसल से दूसरी फसल में भिन्न होती है। आधार बीज उत्पादन में प्रमाणित बीज की तुलना में अधिक (प्रायः दोगुनी) दूरी रखनी पड़ती है। यदि बीज फसल व अन्य खेतों के बीच में कोई रुकावट खड़ी कर दी जाये तो पृथक्करण दूरी कम की जा सकती है, जैसे संकर बीज उत्पादन में सीमान्त पंक्तियों का बोया जाना, किसी दूसरी असम्बन्धित फसल जैसे ढैंचा की पंक्तियां लगाना अथवा कोई भौतिक बाधा, जैसे 2 मीटर ऊंची पबलिथीन शीट खड़ी करना। पौधे या पौधों के समूह को किसी तरह से ढककर, फूलों पर लिफाफे लगाकर, पृथक्करण वाले पौधे के फूलों से नर अंगों को अलग करके भी पृथक्करण किया जा सकता है। जब बीज फसल को भिन्न फसल के खेतों से अपेक्षित दूरी पर उगाना संभव नहीं होता तो बीज

फसलों/किस्मों के बीच दूरी अलगाव

बाधा अलगाव

फसल को अगेती या पछेती फसल के रूप में उगाया जाता है, जिससे बीज फसल व निकटस्थ भिन्न फसल में पुष्पन भिन्न समय पर हो।

बीजोपचार

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन हेतु बीज उपचार तकनीक अत्यंत आवश्यक है। बुवाई से पहले बीज का फफूंदनाशी, कीटनाशी या जैविक उपचार करें। बीज उपचार से रोग, कीट तथा पोषण संबंधी समस्याओं पर नियंत्रण होता है और स्वस्थ एवं उच्च गुणवत्ता वाले बीज प्राप्त होते हैं।

- **फफूँदनाशी उपचार:** बीज जनित रोगों (कवकजनित झुलसा, गेरूई, जड़ गलन, चूर्णी फफूंदी आदि) की रोकथाम हेतु। सामान्य खुराक: कार्बेन्डाजिम/थायरम/कैप्टान/मैनकोजेब– 2–3 ग्राम प्रति किग्रा बीज।
- **कीटनाशी उपचार:** (जरूरत हो तभी) दीमक तना छेदक दीमक एवं भंडारण कीट नियंत्रण हेतु। सामान्य दवाएँ: इमिडाक्लोप्रिड 600 एफएस/क्लोथियानिडिन – 5 मि.ली.धकिग्रा बीजळ 5 मि.ली. प्रति किग्रा बीज।
- **जैविक उपचार:** बीज को हल्का गीला करके जैव उर्वरक लगाएँ, छाया में सुखाएँ और तुरंत बोवाई करें।
- दलहनी फसलों में (चना, मसूर, मटर) : उपयुक्त राइजोबियम (5–10 ग्राम प्रति किग्रा बीज) व फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु कल्चर से बीजोपचार करें। इससे अंकुरण, रोग प्रतिरोध एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायता मिलती है।
- सभी फसलें → फबस्फेट घुलनशील जीवाणु, एजोटोबैक्टर आदि से उपचार करे।

रबी फसलों के बीजोत्पादन सम्बन्धी तकनीकी जानकारी

फसल	बीज दर कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर	कतार दूरी (सेमी में)	गहराई (सेमी में)	अन्य किस्म से पृथक्करण दूरी (मीटर में)		निरीक्षण संख्या	निरिक्षण के समय फसल की अवस्था
				आधार	प्रमाणित		
गेहूँ, जौ	100–120	20–22	4–5	3	3	2	बालियां आने पर फसल पकने पर
चना	75–100	30–45	5–8	10	5	2	पुष्प अवस्था पर फसल पकने की स्थिति में
मसूर	30–40	20–25	3–4	10	5	2	पुष्प अवस्था पर फसल पकने पर
मटर	60–80	30	5–6	10	5	2	पुष्प अवस्था पर फसल पकने पर
सरसों	4–6	30–45	2–3	100	50	3	पूर्व पुष्प अवस्था पर पुष्प अवस्था पर
अलसी	20–30	25–30	2–3	50	25	3	पूर्व पुष्प अवस्था पर पुष्प अवस्था पर फसल पकने पर
मैथी	20–25	30	2–3	50	25	2	पूर्व पुष्प अवस्था पर पुष्प अवस्था पर
धनिया	10–15	30–45	2–3	200	100	3	पूर्व पुष्प अवस्था पर पुष्प अवस्था पर फसल पकने पर

पोषण एवं सिंचाई प्रबंधन

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन के साथ–साथ समय पर सिंचाई अत्यंत महत्वपूर्ण है। पोषण एवं सिंचाई का प्रबंधन फसल और बीज उत्पादन लक्ष्य के अनुसार होना चाहिए। मिट्टी परीक्षण आधारित संतुलित उर्वरक दें। सूक्ष्म पोषक तत्व (सल्फर, जिंक, बोरॉन आदि) का ध्यान रखें। दलहनी फसलों में प्रारंभिक थोड़ी नत्रजन व अधिक फॉस्फोरस दें। अत्यधिक सिंचाई से बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है, अतः केवल आवश्यक अवस्था पर ही पानी दें। संतुलित खाद .उचित सिंचाई से बीज का आकार बड़ा, अंकुरण दर अधिक और बीज की भंडारण क्षमता बेहतर होती है। फोलियर स्प्रे→ 2% यूरिया . माइक्रोन्यूट्रिएंट (फूल व दाना भरने पर)। $ZnSO_4$ 20-25 किग्रा प्रति हे., बोरॉन 1–2 किग्रा प्रति हे., मोलिब्डेनम (दलहनी में बीज उपचार)।

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन हेतु पोषण प्रबंधन

फसल	N P K मात्रा	विशेष बातें
गेहूँ एवं जौ	N% 120–150, P_2O_5% 60–80, K_2O% 40–60 किग्रा प्रति हे.	N को 3 भागों में दें → ½ बुवाई पर, ¼ पहली सिंचाई पर, ¼ गुट्टी (CRI) अवस्था पर। अच्छी N आपूर्ति से दाने मोटे व अंकुरण अच्छे होते हैं।
चना, मसूर एवं मटर	N% 20–25 (स्टार्टर डोज), P_2O_5% 40–60, K_2O% 20–40, सल्फर 20 –25 किग्रा प्रति हे.	बीज उत्पादन हेतु राइजोबियम व पीएसबी कल्चर का उपयोग आवश्यक। N कम लेकिन P अधिक दें → बीज का आकार व अंकुरण बेहतर।
सरसों	N% 80–120, P_2O_5% 40–60, K_2O% 20–40, सल्फर 30–40 किग्रा प्रति हे.	सल्फर अनिवार्य → तेल और बीज गुणवत्ता सुधारता है।
अलसी	N% 40–60, P_2O_5% 30–40, K_2O% 20–30 किग्रा प्रति हे.	पर्याप्त K देने से बीज की गुणवत्ता व तेल की मात्रा सुधरती है।
मैथी	N% 20–30, P_2O_5% 40–50, K_2O% 20–30 किग्रा प्रति हे.	P व K की पर्याप्त आपूर्ति से बीज का विकास और अंकुरण अच्छा होता है।
धनिया	N% 40–60, P_2O_5% 40–50, K_2O% 20–30 किग्रा प्रति हे.	बीज उत्पादन में N को 2 भागों में दें (½ बुवाई पर, ½ फूल अवस्था पर)। इससे बीज परिपक्वता व अंकुरण क्षमता बढ़ती है।

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन हेतु सिंचाई प्रबंधन

फसल	सिंचाई आवश्यकता	महत्वपूर्ण अवस्थाएँ
गेहूँ एवं जौ	4–5 सिंचाई आवश्यक	जुताई/अंकुरण (20–25 दिन), कल्ले बनना (40–45 दिन), बालियां निकलना (60 –65 दिन) , दूधावस्था (80–85 दिन) एव दाना भरना (100–105 दिन)
चना, मसूर एवं मटर	2–3 सिंचाई पर्याप्त	फूल आने पर एव फली भरने पर
सरसों	3–4 सिंचाई आवश्यक	अंकुरण, फूल अवस्था एवं फली विकास अवस्था
अलसी एवं मैथी	2–3 सिंचाई पर्याप्त	शाखाकरण एवं पुष्पन अवस्था
धनिया	3–4 सिंचाई आवश्यक	अंकुरण, पुष्पन एवं दाना भरने की अवस्था

खरपतवार नियंत्रण

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन करते समय खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, पानी, प्रकाश और जगह के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवार की अधिकता से बीज की शुद्धता, गुणवत्ता और उत्पादन दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बोआई के 20–25 दिन बाद पहली और 40–45 दिन बाद दूसरी निराई–गुड़ाई करें। बीज उत्पादन में यह सबसे महत्वपूर्ण है ताकि खरपतवार के बीज फसल के बीज में न मिलें। हेंडीकल्टीवेटर या खुरपी द्वारा कतारों के बीच आसानी से खरपतवार हटाए जा सकते हैं। रासायनिक नियंत्रण बीज उत्पादन में तभी करें जब खरपतवार की समस्या बहुत अधिक हो। आवश्यकता अनुसार पेंडीमेथालिन 1.0 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (बुवाई के तुरंत बाद, पहली सिंचाई से पहले) इसोप्रोट्यूरॉन 1.0 किग्रा या क्लोडिनाफॉप 60 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर (30–35 दिन बाद) जैसे शाकनाशी का प्रयोग करे। शाकनाशी का प्रयोग करते समय खेत में नमी की स्थिति, खरपतवार की प्रजाति और फसल की संवेदनशीलता अवश्य ध्यान रखें।

रोगिंग

रबी फसलों में उन्नत बीज उत्पादन करते समय रोगिंग एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इससे बीज की शुद्धता और गुणवत्ता बनी रहती है। फसल में अक्सर कुछ पौधे ऐसे निकल आते हैं जो ऑफ–टाइप, अन्य किस्मों के पौधे, रोगग्रस्त पौधे, खरपतवार या जंगली रिश्तेदार पौधे होते है। अगर इन्हें समय पर नहीं हटाया जाए तो बीज की गुणवत्ता, अंकुरण क्षमता और प्रमाणन पर बुरा असर पड़ता है। इसलिए बीज उत्पादन में

रोगिंग अनिवार्य है और खेत में नियमित रूप से चलकर पौधों का निरीक्षण करें। जो पौधे किस्म से अलग दिखें (रंग, ऊँचाई, बालियों/फली का आकार, फूल का रंग आदि में अंतर) उन्हें चिन्हित कर उखाड़कर नष्ट कर दें।

रोगिंग का सही समय: रबी फसलों में 3–4 चरणों पर रोगिंग करना जरूरी होता है:

1. शुरुआती अवस्था – असामान्य अंकुर या पत्तियाँ दिखने पर निकाल दें।
2. वनस्पति अवस्था – पत्तियों का रंग, आकार और पौधे की बढ़वार देखकर हटाएँ।
3. फूल आने की अवस्था – फूल के रंग, समय और आकार देखकर गलत पौधे हटाएँ।
4. फल/बीज बनने की अवस्था–फली/बालियों के आकार व परिपक्वता देखकर भिन्न पौधे निकालें।

फसल–वार रोगिंग के संकेत

- गेहूँ /जौ → पौधे की ऊँचाई, बालियों की लम्बाई, दानों का रंग।
- चना/ मसूर/मटर → फूल का रंग, फली का आकार व संख्या।
- सरसों → फूल का रंग (पीला / हल्का), फली की लम्बाई और पौधे की शाखाएँ।

कटाई व मड़ाई

रबी फसलों के उन्नत बीज उत्पादन में कटाई और मड़ाई सामान्य उत्पादन से अलग और अधिक सावधानी से की जाती है क्योंकि यहाँ बीज की शुद्धता, अंकुरण क्षमता और नमी का स्तर बहुत महत्वपूर्ण होता है। जब अधिकांश फलियाँ /बालियाँ पककर भूरे/पीले रंग की हो जाएँ और दाने कठोर हो जाएँ तब कटाई करें। बीज उत्पादन में अलग–अलग किस्मों की फसलें कभी भी एक साथ न काटें। मड़ाई बैल/ट्रैक्टर चलाकर या थ्रेशर से एवं हमेशा साफ–सुथरे तिरपाल पर करें ताकि मिट्टी, पत्थर, खरपतवार या अन्य बीज न मिलें।

- अनाज फसलें (गेहूँ, जौ) – नमी 18–20 प्रतिशत होने पर कटाई करें।
- दलहन (चना, मसूर, मटर) – फली भूरी होकर कठोर होने लगे तब कटाई करें।
- सरसों – फलियाँ पीली हो जाएँ और दाने कठोर हो जाएँ तब कटाई करें।

बीज भंडारण

मड़ाई के बाद बीज को तुरंत धूप में सुखाएँ। बीज की नमी 8–10 प्रतिशत तक लाना जरूरी है ताकि वह सुरक्षित रहे। सुखाने के समय बीज को बार–बार पलटते रहें और मोटी परत में न सुखाएँ। पूरी तरह सूखने के बाद बीज को साफ और सूखे बोरे/कंटेनर में भरें। बोरों पर फसल का नाम, किस्म, वर्ष और खेत/लॉट संख्या का लेबल लगाएँ। भंडारण स्थान ठंडा, सूखा और हवादार होना चाहिए। नमी और कीट नियंत्रण के लिए नीम की पत्तियाँ/फफूंदनाशी पाउडर का प्रयोग कर सकते हैं।

रबी की फसलों के अंकुरण एवं शुद्धता के मापदंड

फसल	बीज के प्रकार	शुद्ध बीज (%)	दूसरी फसल के बीज (प्रति कि.ग्रा.)	कुल खरपतवार (प्रति कि.ग्रा)	अन्य पहचान योग्य किस्म के बीज (प्रतिकि.ग्रा.)	आपत्तिजनक खरपतवार बीज (प्रति कि.ग्रा.)	इनर्ट मेटर (%)	नमी % (सामान्य पैकिंग)	अंकुरण (%)
		न्यूनतम	अधिकतम	अधिकतम	अधिकतम	अधिकतम	अधिकतम	अधिकतम	न्यूनतम
गेंहूँ	आधार	98	10	10	–	2	2	12	85
	प्रमाणित	98	20	20	–	5	2	12	85
जौ	आधार	98	10	10	10	–	2	12	85
	प्रमाणित	98	20	20	20	–	2	12	85
चना	आधार	98	0	0	5	–	2	9	85
	प्रमाणित	98	5	0	10	–	2	9	85
मसूर	आधार	98	5	10	10	–	2	9	75
	प्रमाणित	98	10	20	20	–	2	9	75
मटर	आधार	98	0	0	5	–	2	9	75
	प्रमाणित	98	5	0	10	–	2	9	75
सरसों	आधार	97	10	10	0.1 प्रतिशत	5	3	8	85
	प्रमाणित	97	20	20	0.5 प्रतिशत	10	3	8	85
अलसी	आधार	98	10	5	10	–	2	9	80
	प्रमाणित	98	20	10	20	–	2	9	88
मैथी	आधार	98	10	10	10	2	2	8	70
	प्रमाणित	98	10	10	20	5	2	8	70
धनिया	आधार	97	10	–	–	–	3	10	65
	प्रमाणित	97	20	–	–	–	3	10	65

उन्नत बीज उत्पादन में यंत्रीकरण एवं महत्व

राजेश कुमार शर्मा, सागर कुमार शर्मा एवं योगेंद्र शर्मा
यांत्रिक कृषि फार्म, कोटा और उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़ और एआरएस, कोटा, (कृषि विश्वविद्यालय, कोटा)

कृषि उत्पादन की सफलता का आधार उच्च गुणवत्ता वाले बीजों पर निर्भर करता है। "अच्छा बीज आधी फसल" कहावत इसका महत्व स्पष्ट करती है। उन्नत बीज न केवल फसल की उपज बढ़ाने में सहायक होते हैं, बल्कि उनकी गुणवत्ता, शुद्धता और रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बेहतर होती है। उन्नत बीज उत्पादन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें खेत की तैयारी से लेकर बीज की पैकेजिंग व भंडारण तक अनेक चरण आते हैं। इन सभी चरणों में आधुनिक मशीनों का प्रयोग आवश्यक है। यंत्रीकरण से बीज उत्पादन प्रक्रिया में श्रम, समय और लागत की बचत होती है तथा कार्य की शुद्धता और समानता सुनिश्चित होती है। पारंपरिक तरीकों की तुलना में आधुनिक कृषि यंत्र जैसे सीड ड्रिल, पावर वीडर, स्प्रेयर, हार्वेस्टर, थ्रेशर, सीड प्रोसेसिंग यूनिट और पैकेजिंग मशीनें बीज उत्पादन को अधिक कुशल और वैज्ञानिक बनाते हैं। इस प्रकार, उन्नत बीज उत्पादन में यंत्रीकरण न केवल किसानों की उत्पादकता बढ़ाने का साधन है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण बीज उपलब्ध कराकर कृषि क्षेत्र की आत्मनिर्भरता और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

उन्नत बीज उत्पादन में यंत्रीकरण का महत्व :

- गुणवत्ता व शुद्धता में वृद्धि–मशीनों द्वारा बीज की सफाई, ग्रेडिंग व उपचार करने से शुद्ध, रोगमुक्त और उच्च अंकुरण क्षमता वाले बीज प्राप्त होते हैं।
- समय और श्रम की बचत – आधुनिक यंत्रों से कम समय में बड़े पैमाने पर बीज तैयार करना संभव है।
- बीज हानि में कमी–थ्रेशर व हार्वेस्टर से बीज टूट–फूट और बर्बादी कम होती है।
- मानकीकरण–मशीनों से तैयार बीज आकार, वजन और गुणवत्ता में एकसमान होते हैं, जो प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु आवश्यक है।
- सुरक्षित भंडारण–नियंत्रित वातावरण और पैकेजिंग मशीनों से बीज लंबे समय तक जीवंत (Viable) रहते हैं।
- लागत में कमी – यंत्रीकरण से उत्पादन लागत घटती है और लाभांश बढ़ता है।
- बड़े पैमाने पर उत्पादन – बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए यंत्रीकरण ही एकमात्र उपाय है।
- आर्थिक लाभ–कम समय और कम श्रम लागत में अधिक उत्पादन होने से किसानों की आय बढ़ती है।
- आधुनिक कृषि अपनाने में सहायक–प्रिसिजन फार्मिंग, संरक्षण कृषि, न्यूनतम जुताई आदि उन्नत तकनीकों का उपयोग मशीनों से आसान होता है।

बीज उत्पादन में आवश्यक मशीनें एवं उनकी उपयोगिता :

1. खेत की तैयारी एवं बुवाई में यंत्रीकरण :

ट्रैक्टर, रोटावेटर और हैरो जैसी मशीनों से खेत की जुताई तेजी से और उत्तम तरीके से होती है। साथसाथ भूमि को भूरभूरी व समतल बनाने के लिए किया जाता है। सीड ड्रिल या प्लांटर द्वारा बीज समान गहराई और दूरी पर बोए जाते हैं, जिससे अंकुरण दर अधिक होती है और पौधों की वृद्धि एकसमान रहती है। इससे बीज की बचत भी होती है और उत्पादन लागत घटती है। रिजबेड फॉर्मर एवं बीबीएफ द्वारा ऊँची क्यारियाँ बनाना (सब्जियों/तेज जलनिकास वाली फसलों के लिए), हवापानी का संतुलन बेहतर होता है। भूमि के समतलीकरण के लिए लेजर लैण्ड लेवलर ऊँची जगह से मिट्टी काटकर नीची सतह पर भर देता है जिससे समय की बचत होती है तथा समतलीकरण की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है। प्न्यूमैटिक/प्रिसीजन प्लांटर द्वारा एकएक दाना सटीक स्थान पर डाला जाता है। इस बुवाई मळीन का उपयोग हाइब्रिड/फाउंडेशन व सब्जी बीजों के लिए आदर्श माना जाता है।

- **उपयोगिता :** मिट्टी का अच्छा भौतिक वातावरण, समान नमी, अच्छी अंकुरण स्थिति, खरपतवार नियंत्रण, बीज की बचत, समान पौध संख्या और उच्च शुद्धता।
- **महत्व :** बीज अंकुरण दर में वृद्धि, पौधों की समान वृद्धि, उच्च उपज क्षमता, प्रमाणित बीज उत्पादन में एकरूप पौध खड़ी करना व गुणवत्ता बीज उत्पादन में सहायक

रोटावेटर

हैरो

बीबीएफ

लैजर लैण्ड लेवलर

प्न्यूमैटिक/प्रिसीजन प्लांटर

2. फसल प्रबंधन में यंत्रीकरण :

बूम स्प्रेयर/पावर स्प्रेयर और डस्टर मशीनों से उर्वरक, खरपतवारनाशी तथा कीटनाशक दवाओं का समान छिड़काव किया जा सकता है। इससे पौधे रोग–मुक्त रहते हैं और बीज की गुणवत्ता सुरक्षित रहती है। मजदूरों की कमी की स्थिति में यह मशीनें अत्यंत सहायक सिद्ध होती हैं। मैकेनिकल/पावर वीडर द्वारा निराई–गुड़ाई तेज, खरपतवार के दबाव में कमी आती है। ड्रिप इरिगेशन व फर्टिगेशन यूनिट द्वारा पौधों को नियंत्रित सिंचाई व पोषण दिया जाता है।

- **उपयोगिता :** रोग–मुक्त पौधे व स्वस्थ वृद्धि।
- **महत्व :** गुणवत्तापूर्ण और रोगमुक्त बीज उत्पादन सुनिश्चित करना।

बूम स्प्रेयर

फर्टिगेशन यूनिट

3. कटाई एवं मड़ाई में यंत्रीकरण :

आजकल ट्रैक्टर चलित वोर्टिकल कन्वेयर के प्रयोग से फसल की कटाई में कम समय लगता है व फसल काटकर एक तरफ भी गिरा दिया जाता है जिससे इक्कठा करके गहाई करने में सुविधा रहती है। साधारणतः रीपर एक घण्टे में लगभग 0.3 से 0.4 हेक्टर फसल की कटाई कर देता है। इसका प्रयोग छोटे/मध्यम आकार के खेतो में किया जाता है। आधुनिक कंबाइन हार्वेस्टर और बीज थ्रेशर (मल्टीक्रॉप/विशिष्ट) से कटाई व मड़ाई तेजी से तथा कम नुकसान के साथ होती है। बीज टूटने–फूटने की संभावना बहुत कम होती है और समय पर कटाई होने से बीज की अंकुरण क्षमता बनी रहती है। इससे बीज उत्पादन की लागत भी घटती है। मुख्यतः धनिये की थ्रेशिंग में इस थ्रेशर का उपयोग करने से दाना कम टूटता है व साफ भी निकलता है।

कंबाईन हार्डवेस्टर

रीपर

मल्टीक्रोप थ्रेशर

4. बीज सुखाने में यंत्रीकरण :

बीज उत्पादन की प्रक्रिया में बीज सुखाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है, क्योंकि नमी अधिक रहने पर बीजों में फफूंद, जीवाणु, कीट प्रकोप, अंकुरण क्षमता में कमी और भंडारण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। परंपरागत रूप से किसान बीजों को धूप में सुखाते हैं, लेकिन यह विधि मौसम पर निर्भर होती है, समय अधिक लेती है और गुणवत्ता की दृष्टि से सुरक्षित नहीं रहती। इस कमी को दूर करने के लिए बीज सुखाने में विभिन्न यंत्रीकृत मशीनों का उपयोग किया जाता है। बीज सुखाने में यंत्रीकरण से न केवल बीजों की गुणवत्ता सुरक्षित रहती है, बल्कि अंकुरण क्षमता भी लंबे समय तक बनी रहती है। सोलर टनल ड्रायर छोटे किसानों के लिए किफायती और उपयोगी हैं, जबकि मैकेनिकलसीड ड्रायर (बैच/कॉन्टिन्यूअस) बड़े बीज उत्पादन केंद्रों के लिए उपयुक्त हैं। डिह्यूमिडिफाइड सीड ड्रायर–नमी लक्षित स्तर तक नियंत्रित ढंग से घटाता है। यंत्रीकरण से बीज सुखाने की प्रक्रिया तेज, सुरक्षित, मौसम–स्वतंत्र और वैज्ञानिक बनती है।

सोलर टनल ड्रायर

डिह्यूमिडिफाइड सीड ड्रायर

5. बीज की सफाई और ग्रेडिंग में यंत्रीकरण :

प्री–क्लीनर द्वारा तिनका, धूल, भूसा, बड़ेछोटे कण व अशुद्धियाँ हटाई जाती है। एयर स्क्रीन क्लीनर, इंडेंटेड सिलिंडर, ग्रैविटी सेपरेटर, स्पाइरल सेपरेटर, कलर सॉर्टर और डिस्टोनर जैसी मशीनें बीज को आकार, लंबाई, वजन और शुद्धता के आधार पर वर्गीकृत करती हैं। रोगग्रस्त, हल्के और अधपके बीज अलग हो जाते हैं और केवल शुद्ध बीज प्राप्त होते हैं। यह प्रक्रिया बीज की गुणवत्ता को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाती है।

महत्व : प्रमाणित व उच्च गुणवत्ता वाले बीज तैयार करना।

कलर सार्टर मशीन

चलित बीज प्रसंस्करण मशीन

6. बीज उपचार में यंत्रीकरण :

सीड ट्रीटमेंट मशीनों से बीज पर फफूंदनाशी, कीटनाशी या जैव–उपचारकों की समान परत चढ़ाई जाती है। इससे बीज रोग एवं कीटों से सुरक्षित रहता है और अंकुरण दर अधिक होती है। मैनुअल उपचार की अपेक्षा यह प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक एवं प्रभावी होती है। फिल्म

कोटिंग मशीन द्वारा बीज पर सुरक्षित पॉलिमर कोटिंग की जाती हैं जिससे हैंडलिंग बेहतर हो जाती हैं। इनॉकुलेंट/माइक्रोबियल डोजर द्वारा दलहनी बीज पर राइजोबियम/पीएसबी का सटीक लेप किया जाता है। पेललेटाइजर द्वारा बहुत छोटे बीजों को एकरूप आकार एव प्रिसीजन बुवाई में सहायक होता है।

धूल उपचारक

स्लरी बीज उपचारक

7. बीज गुणवत्ता परीक्षण में यंत्रीकरण :

बीज उत्पादन की प्रक्रिया में बीज परीक्षण एक अनिवार्य चरण है। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसानों तक जो बीज पहुँच रहा है वह उच्च गुणवत्ता, शुद्ध, जीवंत और स्वस्थ हो। परंपरागत विधियों में परीक्षण प्रक्रिया श्रमसाध्य, समय लेने वाली और मानवीय त्रुटियों से प्रभावित होती थी। आधुनिक समय में यंत्रीकरण और स्वचालन के माध्यम से बीज परीक्षण अधिक तेज, सटीक और वैज्ञानिक हो गया है। बीज परीक्षण में डिजिटल मॉइस्चर मीटर, इलेक्ट्रॉनिक सीड मॉइस्चर टेस्टर, डिजिटल इमेज एनालाइजर, ऑटोमेटेड सीड हेल्थ एनालाइजर, जर्मिनेशन चैंबर, इलेक्ट्रॉनिक सीड काउंटर व प्योरिटी बोर्ड इत्यादि उपकरण काम मे लिए जा रहे है। बीज प्रमाणन व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्यता एवं किसानों का विश्वास जीतना इनका महत्व है।

8. बीज का भंडारण एवं पैकेजिंग में यंत्रीकरण :

ऑटोमैटिक वीइंग, बैगिंग, पैकिंग एवं सीलिंग मशीनों से बीजों को निर्धारित मात्रा में पैक किया जाता है। वैक्यूम/नाइट्रोजन फ्लश पैकिंग द्वारा बीजों को ऑक्सीडेशन व नमी से सुरक्षित रखा जाता हैं। कोल्ड स्टोरेज व नियंत्रित वातावरण भंडारण से बीज की अंकुरण क्षमता लंबे समय तक बनी रहती है। इससे बीज की गुणवत्ता बाजार में भी बनी रहती है और किसानों को समय पर अच्छा बीज उपलब्ध हो पाता है।

- **उपयोगिता :** बीज लंबे समय तक जीवंत और गुणवत्तापूर्ण बने रहते हैं।
- **महत्व :** किसानों तक गुणवत्तापूर्ण बीज सुरक्षित अवस्था में पहुँचाना।

9. विशिष्ट हाइब्रिड सीड ऑपरेशन में यंत्रीकरण :

हाइब्रिड बीज उत्पादन एक अत्यंत सूक्ष्म, श्रमसाध्य और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाले नर और मादा जनक पौधों से नियंत्रित परागण कराकर बीज प्राप्त किए जाते हैं। पारंपरिक तरीके से यह कार्य हाथों से किया जाता था, जिसमें अधिक श्रम, समय और लागत लगती थी। आधुनिक युग में यंत्रीकरण और स्वचालन ने हाइब्रिड बीज उत्पादन को अधिक सटीक, किफायती और बड़े पैमाने पर संभव बना दिया है।

- मकई डिटैसलर – फेमेल पैरेंट का टैसल हटाने के लिए, आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखना।
- बैटरी ऑपरेटेड पोलिनेशन गन (हाथ चलित ब्लोअर/ब्रश) – फूलों पर पराग छिड़कने हेतु एवं नियंत्रित परागण में सहायक।
- पोलन कलेक्टर एवं पोलन स्टोरेज चौम्बर – नर पौधों से पराग एकत्रित करना और मादा फूलों पर छिड़कना।

फसल के अनुसार त्वरित मार्गदर्शिका :

- **गेहूँ/धान :** लेजर लेवलर → सीड ड्रिल/ट्रांसप्लांटर → बूम स्प्रेयर → कम्बाइन/एक्सियल थ्रेशर → प्री क्लीनर एयर स्क्रीन → ग्रैविटी → ट्रीटर → बैगिंग/कूल स्टोरेज।
- **मकई (हाइब्रिड) :** प्रिसीजन प्लांटर → डिटैसलर → बूम स्प्रेयर → शेलर → क्लीनर/इंडेंटेड सिलिंडर → ग्रैविटी → कोटिंग → पैकिंग।
- **दालें/तिलहन :** बेड प्लांटर → पावर वीड्र → विंड्रोवर → थ्रेशर/डिकॉर्टिकेटर → क्लीनिंग/डिस्टोनर → ग्रैविटी → ट्रीटर → बैगिंग।

निष्कर्ष

बीज उत्पादन में आधुनिक मशीनों का प्रयोग प्रत्येक चरण पर अनिवार्य है। यंत्रीकरण से बीज उत्पादन बड़े पैमाने पर संभव हो पाता है। मशीनों से तैयार बीज की गुणवत्ता, शुद्धता, अंकुरण क्षमता और रोगमुक्तता सुनिश्चित होती है, जिससे गुणवत्ता मानक पूरे होते हैं। यह प्रक्रिया बीज उत्पादन को व्यावसायिक रूप से सफल बनाती है और निर्यात की संभावना भी बढ़ाती है। अतः बीज उत्पादन में आधुनिक मशीनों का उपयोग ही उन्नत एवं लाभकारी बीज उद्योग की आधारशिला है। इस प्रकार उन्नत बीज उत्पादन में यंत्रीकरण को रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है।

❋❋❋

लवणीय क्षेत्रों में जौ की खेती, टिकाऊ कृषि की ओर एक कदम

नूपुर शर्मा, संतोष झाझड़िया एवं किरण मीणा
कृषि विज्ञान केन्द्र, सवाईमाधोपुर तथा कृषि महाविद्यालय, कोटा

जौ (Hordeum vulgare) विश्व की एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है। यह सभ्यता के प्रारंभ से ही उगाई जाने वाली सबसे पुरानी घरेलू फसलों में से एक है। जौ के दानों में औसतन 12.5 प्रतिशत नमी, 11.5 प्रतिशत एल्ब्यूमिनॉयड्स, 74 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 3.9 प्रतिशत रेशा (क्रूड फाइबर) और 1.5 प्रतिशत राख पाई जाती है। यह ठंडे अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए भोजन का एक प्रमुख स्रोत है। जौ के बीज माल्ट बनाने में प्रयुक्त होते हैं, जो बेकरी उत्पादों और ऊर्जा–समृद्ध खाद्य पदार्थो की तैयारी में इस्तेमाल किया जाने वाला मध्यवर्ती उत्पाद है।

जौ की प्रमुख उत्पादक देश, चीन, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका और स्पेन हैं। भारत में जौ मुख्यतः मध्य उत्तर प्रदेश, पूर्वी राजस्थान और उत्तर–पश्चिम बिहार के क्षेत्रों में उगाया जाता है।

वर्ष 2021–22 में राजस्थान में जौ की बोआई का क्षेत्रफल लगभग 200.47 हजार हेक्टेयर रहा, जिससे कुल 711.05 हजार टन उत्पादन हुआ और औसत उपज 3547 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही। वर्ष 2022–23 में राजस्थान में बोआई का क्षेत्र बढ़कर 336.68 हजार हेक्टेयर हो गया और उत्पादन भी बढ़कर 947.75 हजार टन तक पहुँच गया, हालांकि उपज घटकर 2815 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही। यदि संपूर्ण भारत की स्थिति देखें तो वर्ष 2021–22 में जौ का कुल क्षेत्रफल 453.32 हजार हेक्टेयर था, जिससे 1371.36 हजार टन उत्पादन प्राप्त हुआ और औसत उपज 3025 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही। अगले वर्ष 2022–23 में क्षेत्रफल बढ़कर 617.59 हजार हेक्टेयर, उत्पादन बढ़कर 1687.88 हजार टन और औसत उपज 2733 किग्रा प्रति हेक्टेयर रही। स्रोत. डीईएस, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत।

यह फसल विविध कृषि–जलवायु परिस्थितियों जैसे सूखा, लवणीयता, क्षारीयता, वर्षा–आधारित अथवा सिंचाई पर आधारित पारिस्थितिकी तंत्र, मैदानी या पहाड़ी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, जहाँ जलवायु संबंधी बाधाओं के कारण गेहूँ की खेती संभव नहीं होती। जौ देर से बोई जाने वाली स्थिति में भी उपयुक्त मानी जाती है। हालाँकि इस फसल की उत्पादन क्षमता अधिक है, वर्तमान में इसकी उत्पादकता संतोषजनक स्तर पर नहीं है। इसलिए, जौ की खेती में अच्छी उत्पादन तकनीक अपनाकर उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है।

इंडो–गंगेटिक मैदानों की बलुई दोमट से दोमट मृदाएँ, जिनकी अभिक्रिया उदासीन (neutral) से हल्की लवणीय (mild saline) हो तथा जिनमें मध्यम स्तर की उर्वरता पाई जाती है, जौ की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती हैं। फिर भी, जौ की विशेषता यह है कि इसे विविध प्रकार की मृदाओं पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जैसे लवणीय, सोडिक एवं हल्की मृदाएँ। जौ स्वाभाविक रूप से एक लवण सहनशील फसल है। यही कारण है कि इसकी खेती आज पारंपरिक क्षेत्रों से आगे बढ़कर पश्चिम बंगाल के सुंदरबन की तटीय लवणीय भूमि तथा उत्तरी कर्नाटक के नहर सिंचित क्षेत्रों की लवणीय काली मृदाओं पर भी सफलतापूर्वक की जा रही है।

किस्म का चयन

बेहतर उपज प्राप्त करने के लिए नई किस्मों की खेती आवश्यक है। क्षेत्र, जलवायु एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों तथा उपयोग की आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त किस्म का चयन किया जाना चाहिए।

आर.डी. 2899 (2018) सिंचित क्षेत्रों में समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त इस किस्म के उपज क्षमता 55 से 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म के पौधों की ऊँचाई 81 से 91 सेंटीमीटर तथा कल्लों की संख्या 110 से 130 प्रति वर्ग मीटर तक होती है। यह किस्म पीली तथा भूरी रोली रोग रोधक है। इस किस्म की बालियाँ छः पंक्ति युक्त एवं मध्यम लम्बाई वाली होती हैं। दाने मोटे एवं आकर्षक पीले रंग के व 1000 दानों का वजन 45 से 49 ग्राम होता है। इस किस्म के दानों में प्रोटीन की औसत मात्रा 11.0 प्रतिशत होती है। इस किस्म की परिपक्वता अवधि 110 से 120 दिन है।

डी.डब्ल्यू.आर.बी. 137 (2018) सिंचित क्षेत्रों में समय पर बुवाई हेतु उपयुक्त इस किस्म की औसत उपज 52.20 क्विं. प्रति हेक्टेयर है। इस किस्म के पौधों की ऊँचाई 81 से 88 से.मी. होती है। तुलनात्मक रूप से मोटे एवं आकर्षक दानों वाली इस किस्म के 1000 दानों का वजन 41ळ47 ग्राम होता है। यह किस्म पीली रोली रोग के प्रति उच्च प्रतिरोधक है। इस किस्म के दानों में प्रोटीन की मात्रा 11.00ळ12.70 प्रतिशत होती है।

उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र

पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर क्षेत्र छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू एवं काठुआ जिला (जम्मू–कश्मीर), तथा हिमाचल प्रदेश के ऊना एवं पांवटा घाटी।

किस्म (Varieties)	उत्पादन स्थिति (Production condition)	औसत उत्पादन (q/ha)	उपयोग (Utility)
आर.डी. 2794*	सिधाईए समय पर बोवाई लवण सक्षम	29.90	चारा (Feed)
BH 946	सिंचित समय पर बोवाई	51.96	चारा (Feed)
DWRB 92*	सिंचित समय पर बोवाई	49.81	माल्ट (Malt)
DWRUB 52*	सिंचित समय पर बोवाई	45.10	माल्ट (Malt)
आर.डी. 2668*	सिंचित समय पर बोवाई	42.50	माल्ट (Malt)
आर.डी. 2035	सिंचित समय पर बोवाई, निमेजोड प्रतिरोधक	42.70	भोजन एवं चारा (Food & Fodder)
आर.डी. 2592 राजस्थान	सिंचित समय पर बोवाई	40.10	भोजन
आर.डी. 2052 राजस्थान	सिंचित समय पर बोवाई, निमेजोड प्रतिरोधक	30.68	भोजन
आर.डी. 2552	सिंचित समय पर बोवाई	46.10	भोजन व चारा
आर.डी. 2715	सिंचित समय पर बोवाई	26.30	भोजन व चारा

बीजोपचार

बीज द्वारा फैलने वाली बीमारियों जैसे आवृत कुंडवा एवं पतिधारी रोग से फसल को बचाने हेतु बीज को बोने से पूर्व 2.5 ग्राम मैन्कोजेब या 3 ग्राम थायरम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। जहाँ अनावृत कुंडवा का प्रकोप हो वहाँ 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम या कार्बेन्डाजिम. थायरम (1 ग्राम. 1 ग्राम) (रेडी मिक्स) या 1 ग्राम टेबुकोनाजोल 2 प्रतिशत डी.एस. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। कार्बेन्डाजिम से बीज उपचार करने के बाद अन्य किसी फफूंदनाशी से उपचार की आवश्यकता नहीं रहती है। यदि केवल दीमक का ही प्रकोप हो तो बीज को फिप्रोनिल 5 एस.सी. 6 मि.ली. या क्लोथियानिडिन 50 डब्ल्यू.डी.जी. 1.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके ही बुवाई करें। ट्रैक्टर द्वारा बुवाई में कतारों की दूरी 23 सेन्टीमीटर रखे।

बुवाई की स्थिति सिंचित असिंचित	किस्म	बुवाई का उचित समय	बीज की मात्रा (किलो प्रति हेक्टेयर)	कतार से कतार की दूरी (सेन्टीमीटर)
सिंचित (हल्की एवं दोमट मिट्टी)	आर.डी. 2502, आर.डी. 2503, आर.डी. 2052, आर.डी. 2552, आर.डी. 2592, आर.डी. 2899,	मध्य अक्टूबर से नवम्बर	100	23
देरी से बुवाई	आर.डी. 2508	दिसम्बर के तीसरे सप्ताह तक	125	23
सिंचित (भारी मिट्टी)	आर.डी. 2052, आर.डी. 2552, आर.डी. 2503, आर.डी. 2035, आर.डी. 2592, आर.डी. 2715, आर.डी. 2899, आर.डी. 2786, डब्ल्यू.आर. 137	मध्य अक्टूबर से नवम्बर	100	23
देरी से बुवाई	आर.डी. 2508	दिसम्बर के तीसरे सप्ताह तक	125	23
पानी के भराव वाले क्षेत्र	आर.डी. 2624, आर.डी. 2508, आर.डी. 2660	मध्य अक्टूबर से दिसम्बर तक	125	23
असिंचित क्षेत्र	आर.डी. 2624, आर.डी. 2508, आर.डी. 2660	मध्य अक्टूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक	125	23
लवणीय एवं क्षारीय क्षेत्र	आर.डी. 2552, आर.डी. 2794, आर.डी. 2907	मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक	100	23

खेत की तैयारी

जौ की खेती में खेत की जुताई डिस्क हैरो और कल्टीवेटर से की जाती है, इसके बाद पाटा चलाया जाता है। चूँकि जौ नाइट्रोजन और पानी के प्रति संवेदनशील होता है, इसलिए खेत का समतल होना आवश्यक है। खेत को समतल करने के लिए लेजर लैंड लेवलर का उपयोग जरूरी है, जिससे पानी का उचित वितरण और बचत होती है। वर्षा जल को एकत्रित और संचित करने के लिए खेत में मेड़ें बनाई जाती हैं। सिंचित क्षेत्रों में, बुवाई से पहले अंकुरण के लिए खेत की सिंचाई करने के बाद तैयारी की जाती है।

किसान चाहें तो जौ की बुवाई उठी हुई क्यारियों (रेज्ड बेड) पर भी कर सकते हैं, जिसके लिए विशेष रूप से डिजाइन की गई रेज्ड बेड प्लांटर का उपयोग किया जाता है। इससे बीज, खाद और पानी की बचत होती है।

उर्वरकों की मात्रा

मिट्टी की किस्म और बुवाई की स्थिति एवं बीज की किस्म के अनुसार उर्वरकों की मात्रा निम्न स्तरों में आगे दी गई तालिका में दर्शाई जा रही है।

बुवाई की स्थिति एवं किस्मे	स्तर	उर्वरक तत्व प्रति हेक्टेयर किलोग्राम		नत्रजन देने के समय व मात्रा	
		नत्रजन	फॉस्फोरस	बुवाई पूर्व	खडी फसल में
सामान्य बुवाई सिचिति					
आरडी 2035 आरडी 2503 आरडी 2052 आरडी 2552	प्रथम	40	20	20	20
	द्वितीय	60	20	30	30
	तृतीय	80	20	40	40
देरी से बुवाई सिंचित					
आर.डी. 2508	प्रथम	40	20	20	20
	द्वितीय	60	20	30	30
	तृतीय	80	40	40	40
पेटा काश्त					
आर.डी. 2624 आर.डी. 2660, आर.डी. 2508		40	20	40	
पानी के भराव वाले क्षेत्र (असिंचित एवं लवणीय क्षेत्र)					
आर.डी. 2624	प्रथम	20	.	20	
आर.डी. 2508	द्वितीय	25	15	25	
आर.डी. 2552	तृतीय	30	15	30 (लवणीय व क्षारीय क्षेत्रों)	

जौ में हरे चारे और बीज उत्पादन के लिए नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय दें। एक चौथाई नत्रजन हरे चारे की कटाई के बाद तथा शेष एक चौथाई नत्रजन कटाई के 30 दिन बाद पानी के साथ दें।

जौ की उत्पादकता बढ़ाने के लिए यह सलाह दी जाती है कि नत्रजन की कुल मात्रा का 75 प्रतिशत दो भागों में दें 50 प्रतिशत मात्रा बुवाई के समय और 25 प्रतिशत मात्रा 25–30 दिन बाद। इसके अतिरिक्त,एक लीटर नैनो यूरिया का छिड़काव 600 लीटर पानी में मिलाकर क्रमशः बुवाई के 40ळ45 और 60ळ65 दिनों के बाद करें।

सिंचाई : जौ की फसल में समय पर सिंचाई अत्यंत आवश्यक है। हल्की एवं दोमट मिट्टी में सामान्यतः 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है, जबकि भारी मिट्टी में लगभग 2–3 सिंचाइयाँ पर्याप्त रहती हैं। बुवाई के 25–30 दिन बाद पहली सिंचाई करनी चाहिए तथा बाद की सिंचाइयाँ फसल की स्थिति और नमी की आवश्यकता के अनुसार देनी चाहिए। विशेष रूप से फूल आने और दाने भरने की अवस्था में पानी की कमी नहीं होनी चाहिए, अन्यथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जौ की फसल में यदि प्रत्येक 4 दिन के अंतराल पर बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति अपनाई जाए और इस अवधि में कुल वास्तविक वाष्पन का लगभग 60 प्रतिशत भाग पूरा किया जाए, तो यह सबसे अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। इस विधि से पारंपरिक सिंचाई की तुलना में लगभग 24.12 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है तथा लगभग 24.35 प्रतिशत जल की बचत भी हो जाती है।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण

बुवाई के लगभग 10–12 दिन बाद खेत में कम से कम एक बार निराई–गुड़ाई करना आवश्यक होता है ताकि खरपतवार प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट हो जाएँ। इसके बाद भी आवश्यकता अनुसार खरपतवार निकालते रहना चाहिए। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए बुवाई के 30ळ35 दिन बाद अथवा अन्य परिस्थितियों में 40ळ50 दिन के बीच प्रति हेक्टेयर लगभग 500–700 लीटर पानी में 0.5 किलो 2,4–डी एस्टर सॉल्ट या 750 ग्राम 2,4–डी अमाइन सॉल्ट घोलकर छिड़काव करना लाभकारी होता है।

जिन खेतों में गुल्ली डंडा (Phalaris minor) अथवा अन्य जंगली खरपतवारों का प्रकोप अधिक पाया जाता है, वहाँ बुवाई के 30–35 दिन बाद आइसोप्रोट्यूरॉन या मेथाबेन्जोथियोजूरोन जैसे शाकनाशी का प्रयोग करना चाहिए। हल्की मिट्टी के लिए लगभग 0.75 किलो और भारी मिट्टी के लिए लगभग 1.25 किलो सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर पानी में घोलकर एक बार छिड़काव करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। ध्यान रहे कि छिड़काव समान रूप से हो और दोहराया न जाए।

जब खरपतवार अधिक बड़े हो जाएँ, तो उन्हें बीज बनने से पहले ही खेत से निकाल देना उचित होता है।

जौ की फसल में चौड़ी एवं संकरी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए 750 ग्राम आइसोप्रोट्यूरॉन और 4 ग्राम मेटासल्फ्यूरॉन प्रति हेक्टेयर की दर से 600ळ700 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 30–35 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण हेतु हालोक्सीफेन मिथाइल 20.8 प्रतिशत तथा फ्लोरासुलाम 20 प्रतिशत (रेडीमिक्स) का 12.76 ग्राम सक्रिय तत्व 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना भी उपयोगी रहता है।

साथ ही, जौ की फसल में खरपतवारों के प्रभावी प्रबंधन के लिए

पाइरोक्सासलफोन 85 प्रतिशत का 127.5 ग्राम सक्रिय तत्व तथा मेटसल्फ्यूरॉन मिथाइल 20 प्रतिशत का 4 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर 500 लीटर पानी में घोलकर, बुवाई के 30ळ35 दिन बाद छिड़काव करना भी उपयोगी रहता है।

हरे चारे के लिए जौ की खेती

भारत में जौ पारंपरिक रूप से मानव उपभोग एवं पशु आहार हेतु एक अनाज फसल के रूप में उगाई जाती रही है। यह मुख्य रूप से रबी मौसम में उत्तरी मैदानी क्षेत्रों तथा उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में बोई जाती है, विशेषकर वर्षा आधारित अथवा सीमित सिंचाई की स्थिति में, जहाँ भूमि की उर्वरता अपेक्षाकृत कम होती है।

पिछले कुछ वर्षो में यह देखा गया है कि उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के शुष्क भागों (राजस्थान, दक्षिणी हरियाणा, दक्षिण–पश्चिम पंजाब एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में नवंबर से जनवरी माह के दौरान हरे चारे की तीव्र कमी हो जाती है। इन परिस्थितियों में बथुआ (*Trifolium spp-*) तथा गन्ने की पत्तियाँ उत्तरी भारत में हरे चारे के रूप में जौ के अतिरिक्त जई (*Avena sativa*) के साथ उपयोग की जाती हैं। किंतु इन सभी को बार–बार सिंचाई की आवश्यकता होती है, जो जल संकट की स्थिति में संभव नहीं होता।

ऐसी परिस्थितियों में जौ को हरे चारे के रूप में उपयोग किया जा सकता है। हरे चारे के लिए बुवाई के 50–55 दिन बाद पहली कटाई की जा सकती है तथा पुनः उगी फसल को भी चारे के लिए प्रयोग किया जा सकता है। उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में हरे चारे की कटाई 70 दिन बाद ली जा सकती है। चूँकि जौ की फसल से हरा चारा एवं अनाज दोनों ही प्राप्त होते हैं, इसलिए इसे अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी माना जाता है। इसका कारण इसकी द्विउद्देशीय उपयोगिता तथा कम सिंचाई की आवश्यकता है। सामान्यतः इसे केवल दो से तीन सिंचाई की आवश्यकता होती है।

अनुसंधान परिणामों से यह पाया गया है कि मैदानी क्षेत्रों में जौ की किस्में आर.डी. 2715, आर.डी. 2035 तथा आर.डी. 2552 और पहाड़ी क्षेत्रों में BHS 380 को द्विउद्देशीय जौ फसल के रूप में बोया जा सकता है। इनसे अच्छे उत्पादन प्राप्त होते हैं, जिनमें हरे चारे की उपज लगभग 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा अनाज की उपज लगभग 25ळ35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है।

लवण सहनशील फसलों में जौ की भूमिका

विश्व स्तर पर कृषि भूमि का एक बड़ा हिस्सा लवणीय एवं क्षारीय (salt affected) मिट्टियों से प्रभावित है। ऐसी परिस्थितियों में सामान्य फसलों की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। जौ (Hordeum vulgare L-) एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण अनाज फसल है, जो न केवल खाद्यान्न के रूप में बल्कि चारे, पशु–खाद्य एवं औद्योगिक उपयोगों के लिए भी उगाई जाती है। जौ को उच्च स्तर की लवणीयता एवं क्षारीयता सहन करने वाली फसल माना जाता है, इसीलिए इसे "लवण सहनशील फसल" समूह में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

जौ की लवण सहनशीलता के कारण

1. आस्मोटिक समायोजन (Osmotic adjustment)
   जौ पौधा लवणीय परिस्थितियों में भी कोशिकाओं के अंदर जल–संतुलन बनाए रखता है।
2. आयन संतुलन (Ion regulation)
   यह पौधा सोडियम (Na^+) एवं क्लोराइड (Cl^-) जैसे हानिकारक आयनों को कोशिका में विषाक्त स्तर तक नहीं जाने देता तथा पोटेशियम (K^+) की उपलब्धता को बनाए रखता है।
3. जड़ प्रणाली की दक्षता
   जौ की जड़ें क्षारीय मिट्टी में भी गहरी जाकर पोषक तत्वों एवं नमी का उपयोग कर लेती हैं।
4. अनुवांशिक विविधता
   जौ की कई स्थानीय किस्में और उन्नत प्रजातियाँ स्वाभाविक रूप से लवण सहनशील होती हैं, जिन्हें अनुसंधान संस्थानों द्वारा चिन्हित एवं अनुशंसित किया गया है।
5. लवण प्रभावित भूमि में जौ की भूमिका
6. अनाज उत्पादन लवणीय भूमि में जहाँ गेहूँ और चावल की पैदावार कम हो जाती है, वहीं जौ अच्छा उत्पादन देता है।
7. चारा (Fodder) उत्पादन जौ हरा चारा लवणीय परिस्थितियों में भी अधिक पोषक एवं सुपाच्य होता है।
8. भूमि सुधार में योगदान जौ की खेती से भूमि पर जैविक पदार्थ (organic matter) बढ़ता है, जिससे लवणीयता का प्रभाव धीरे–धीरे कम होता है।

लवण प्रभावित क्षेत्रो में अधिक उत्पादन तथा कृषको की आय वृद्धि के लिए जौ की फसल एक अच्छा उपाय है ।

निष्कर्ष

जौ एक ऐसी फसल है जो लवण प्रभावित मिट्टियों में भी स्थिर उत्पादन देती है। इसके लवण सहनशील गुण, सरल प्रबंधन एवं विविध उपयोगिता इसे "लवणीय एवं क्षारीय क्षेत्रों की उपयुक्त फसल" बनाते हैं। जलवायवीय परिवर्तन तथा भूमि क्षरण की समस्याओं को देखते हुए भविष्य में जौ जैसी फसल एक बेहतर विकल्प है !

❋❋❋

शून्य कृषण विधि द्वारा गेहूँ उत्पादन

शालिनी मीणा, उदिती धाकड़, आर. के. मीणा और वर्षा गुप्ता
शस्यविज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

राजस्थान में गेहूँ एक महत्वपूर्ण रबी फसल है, जो खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका मे महत्वपूर्ण योगदान देती है। विशेष रूप से हड़ौती क्षेत्र की उपजाऊ काली मिट्टी और सिंचाई की सुविधा इसे गेहूँ उत्पादन के लिए एक प्रमुख क्षेत्र बनाती है। गेहूँ की खेती में शून्य जुताई अपनाना यहाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मिट्टी की नमी को संरक्षित करने, लागत कम करने और समय पर बुवाई में सुधार करने में मदद करता है खासकर चावल जैसी खरीफ फसलों की कटाई के बाद। शून्य जुताई मिट्टी की डिस्टर्बेंस को भी कम करती है, सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बढ़ाती है, और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती है, जिससे यह कोटा की कृषि–जलवायु परिस्थितियों के लिए एक स्थायी और उपयुक्त पद्धति बन जाती है।

शून्य कृषण द्वारा गेहूँ की खेती क्या है ? शून्य जुताई विधि में, पिछली फसल की कटाई के बाद, बिना किसी पूर्व भूमि तैयारी के जैसे की जुताई या मिट्टी में किसी प्रकार की गड़बड़ी के गेहूँ उगाने की प्रक्रिया शामिल हैं। इसमें, गेहूँ के बीजों को पिछली फसल (जैसे चावल) के अवशेषों में शून्य जुताई वाली सीड ड्रिल का उपयोग करके सीधे बोया जाता है।

शून्य कृषण द्वारा गेहूँ की खेती के लाभ

1 **मृदा अपरदन में कमी :** यह संभवतः सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय लाभ है। फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर छोड़कर, शून्य जुताई एक सुरक्षात्मक आवरण का काम करती है, जो मृदा को वर्षा की बूंदों और हवा के सीधे प्रभाव से बचाती है। इससे अपरदन के कारण होने वाले मृदा क्षरण में कमी आती है, और उपजाऊ ऊपरी मृदा संरक्षित रहती है, जो दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2 **बेहतर जल संरक्षण और अंतःस्यंदन (इनफिल्ट्रेशन) :** अप्रभावित मृदा संरचना, अवशेषों के आवरण के साथ मिलकर, मृदा में जल अंतःस्यंदन को बढ़ाती है और सतही अपवाह को कम करती है। अवशेषों की परत मृदा की सतह से वाष्पीकरण को भी कम करती है, जिससे मृदा में नमी का प्रतिधारण बेहतर होता है।

3 **बेहतर कार्बन निक्षेपण :** पारंपरिक जुताई मृदा कार्बनिक पदार्थों को वायुमंडल के संपर्क में लाती है, जिससे उनका ऑक्सीकरण होता है और कार्बन डाइऑक्साइड (एक ग्रीनहाउस गैस) वायुमंडल में उत्सृजत होती है। इसके विपरीत, शून्य जुताई इस गड़बड़ी को कम करती है, जिससे कार्बन को मिट्टी में संग्रहित किया जा सकता है। यह ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करके जलवायु परिवर्तन को कम करने में योगदान देता है।

4 **मृदा कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि :** सतह पर बचे फसल अवशेष धीरे–धीरे विघटित होते हैं, जिससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का संचय होता है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की उर्वरता, जल धारण क्षमता, पोषक तत्व धारण क्षमता और समग्र मृदा स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।

5 **बढ़ी हुई जैव विविधता:** एक अप्रभावित मृदा पर्यावरण मृदा सूक्ष्मजीवों, कवकों और लाभकारी कीटों के एक स्वस्थ और अधिक विविध समुदाय को बढ़ावा देता है। यह बढ़ी हुई जैव विविधता प्राकृतिक कीट नियंत्रण, पोषक चक्रण और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र स्वास्थ्य में योगदान करती है।

6. **कम ईंधन और मशीनरी लागत :** शून्य जुताई विधि में बिना किसी पूर्व खेत के तैयारी के गेहूँ की सीधी ही बुवाई की जाती है, खेत में ट्रैक्टर कम बार चलाना पड़ता है, जिससे ईंधन की खपत में काफी बचत होती है। यह मशीनरी के टूट–फूट को भी कम करता है, जिससे उनका जीवनकाल बढ़ता है और रखरखाव लागत कम होती है।

7. **समय पर बुवाई :** इसमें धान की कटाई के बाद भूमि को पुनः गेहूँ की बुवाई के लिए तैयार करने में जो समय लगता है, उसमें काफी हद तक कमी की जा सकती है और गेहूँ की समय पर बुवाई की जा सकती है ।

8. **पैदावार में वृद्धि की संभावना :** हालाँकि शुरूआती चरण के दौरान पैदावार में गिरावट हो सकती है, लेकिन दीर्घकालिक अध्ययनों से अक्सर पता चलता है कि शून्य जुताई से मिट्टी की सेहत में सुधार होने पर पारंपरिक रूप से जुताई वाले खेतों की पैदावार के बराबर या उससे भी अधिक पैदावार प्राप्त हो सकती है।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारी : गेहूँ के लिए अच्छी जल निकास वाली क्षार रहित मृदा उपयुक्त रहती है चूँकि शून्य जुताई विधि में गेहूँ की सीधे ही बुवाई की जाती है तो इसमे किसी प्रकार की भूमि तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती।

गेहूँ की उपयुक्त किस्मों का चयन :

राज 4079 : यह 75–80 से. मी. ऊँची, अधिक फुटान वाली, गर्म तापक्रम की सहनशीलता रखने वाली एव रोली रोधक किस्म है। यह 115–120 दिन पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी उपज 47–50 क्विं./ है. होती है।

राज 4037 : मध्यम ऊँचाई (65–95 से.मी.) वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। यह किस्म अधिक फुटान वाली तथा तीनो प्रकार की रोलियो से मध्यम प्रतिरोधी है। यह 125–130 दिन में पक जाती है। समय पर बुवाई के लिये लसचित क्षेत्र में उपयुक्त इस किस्म की औसत उपज 45–50 क्विंटल प्रति है. होती है।

एच आई. 1544 : गेहूं की यह किस्म सिंचित क्षेत्र एवं समय पर बुवाई (नवम्बर के प्रथम पखवाड़े तक) लिये उपयुक्त है। इसके पौधे की ऊचाई 85–98 से मी, तथा पकाव अवधि 125 दिन है। इसकी उत्पादन क्षमता लगभग 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है तथा यह किस्म रोली रोग प्रतिरोधक है।

जी.डब्ल्यू 322 : सिंचित एवं समय से बुवाई के लिये यह उपयुक्त है। इसकी बुवाई का समय नवम्बर का प्रथम पखवाडा है। इसका पौधा 85 सेन्टीमीटर ऊँचा तथा इसके पकने का समय लगभग 120 दिन है। इसकी उत्पादन क्षमता लगभग 47 क्विंटल प्रति है. है। इस किस्म में रोली रोग को सहने की क्षमता है।

पी.डी. डब्ल्यू–215 : इसके पौधों की औसत ऊँचाई 97 सेन्टीमीटर तथा पकने का समय लगभग 142 दिन है। इसकी उत्पादन क्षमता लगभग 45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म रोली रोग क प्रति प्रतिरोधक है।

डी एल 803.3 : रोली प्रतिरोधक इस किस्म के पौधों की ऊँचाई 90–95 सेन्टीमीटर होती है। 115–120 दिन में पकने वाली इस किस्म कि औसत उपज 48 क्विंटल प्रति है. है।

बीज एवं बीज उपचार : इस विधि में गेहूँ की बुवाई के लिए बीज की मात्रा पारम्परिक विधि से 25% अधिक उपयोग में ली जाती है। चूंकि इस विधि में उचित बीजशैया (सीड बेड) तैयार नहीं की जाती तो गेहूँ के समान अंकुरण के लिए बीजदर को बढ़ाया जाता है। अतः शून्य जुताई विधि में गेहूँ की बीजदर 125 किलो/है. उपयोग में ली जाती है।

फसल को रोगो से बचाने हेतु 2 ग्राम थाइरम या 2 से 2.5 ग्राम मैंकोजेब प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। बीज जनित रोग जैसे अनावृत कण्डवा एवं पात कंडवा के नियंत्रण हेतु कार्बोक्सिन 1.5 ग्राम या कार्बेण्डेजिम 1 ग्राम या टेबूकोनाजोल (रैक्सिल) 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से भी उपचारित कर सकते हैं। दीमक नियंत्रण हेतु 450 मि.ली. क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी को आवश्यकतानुसार पानी में घोलकर 100 किलो बीज पर समान रूप से छिडक कर उपचारित करें एवं छाया में सुखाने के बाद बुवाई करें। अंत में एजोटोबेक्टर जीवाणु कल्चर एवं पी.एस.बी कल्चर से बीज को उपचारित कर बोये। एजोटोबेक्टर से उपचारित करके बोने से प्रति है. 20 से 30 किलो नत्रजन व पी.एस.बी कल्चर से उपचारित करके बोने से प्रति है. 20 से 30 किलो फास्फोरस की बचत होती है ।

बुवाई का समय एवं विधि : इस विधि में धान की फसल की कटाई के उपरांत बिना जुताई किये सीधे ही जीरो–सीड–टिल–ड्रिल की सहायता से गेहूँ की बुवाई की जा सकती है। बुवाई 22.5 सेमी कतार से कतार की दुरी पर करनी चाहिए। चूंकि इस विधि में धान की कटाई के बाद किसी प्रकार की जुताई की आवश्यकता नहीं होती तो गेहूँ की समय पर बुवाई की जा सकती जिसे नवम्बर के प्रथम से तीसरे सप्ताह के मध्य पूरी कर लेनी चाहिए।

उर्वरक प्रबंधन : गेहूँ की फसल के लिए 120 किग्रा., नत्रजन, 40 किग्रा फास्फोरस तथा 30 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर उर्वरक की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस, पोटाश की मात्रा बुवाई के समय ऊर कर देवें। नत्रजन उर्वरक की शेष आधी 50 प्रतिशत मात्रा पहली सिंचाई के तुरंत बाद लेकिन निराई–गुड़ाई के पूर्व देनी चाहिये। जस्ते की कमी वाले क्षेत्रो में बुवाई से पूर्व प्रति है 25 किलो जिंक सल्फेट या 10 किलो चिलेटेड जिंक नत्रजन के साथ मिलाकर देवें।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन : सामान्यतः गेहूँ में फसल की स्थिति तथा भूमि में नमी की उपलब्ता को देखते हुए भारी मिट्टी में 3 से 4 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। गेहूँ में निम्न अवस्थाओं पर सिंचाई करना ज्यादा उपयुक्त पाया गया है – प्रथम सिंचाई फसल बोने के 20–25 दिन पर शीर्ष जडे जमने के समय, दूसरी सिंचाई फसल फूटान की उत्तरावस्था के 50 से 60 दिन की अवस्था पर, तीसरी सिंचाई बुवाई के 75 से 80 दिन बाद उस समय करनी चाहिये जब बालियां आनी शुरू हो जाये तथा चौथा सिंचाई दाने की दूधिया अवस्था पर 95–100 दिन की फसल में करनी चाहिए ।

निराई–गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण – शून्य जुताई विधि से बोये गए गेहूँ की फसल में खरपतवार की समस्या पारम्परिक विधि से बोये गये गेंहू की तुलना में कम होती है क्योंकि पिछली फसल के अवशेष खरपवारो के अंकुरण में बाधा उत्त्पन्न करते है किन्तु फिर भी खरपतवार की समस्या होने पर, फसल में पहली सिंचाई के बाद समय–समय पर निराई–गुडाई कर खरपतवार को अवश्य निकालते रहे। रासायनिक विधि से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नियंत्रण के लिए फसल में 40 से 50 दिन के बीच 500 ग्राम 2–4 डी एस्टर साल्ट या 750 ग्राम 2–4 डी अमाइन साल्ट सकिय तत्व रसायन प्रति है0 की दर से 500 से 700 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें या खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हेतु मिश्रित उत्पाद मेटसल्फ्यरान + कारफेनट्राजॉन + 0.2 प्रतिशत एनआळएस का 25 ग्राम सक्रिय तत्व का बुवाई के 30–35 दिन के अंदर छिडकाव करना चाहिए। घास वाले खरपतवारो के नियंत्रण के लिये सल्फोसल्फयूरॉन नामक खरपतवारनाशी का 25 ग्राम प्रति है0 की दर से सरफेक्टेन्ट के साथ प्रथम सिंचाई के बाद छिड़काव करें। गेहूँ की खड़ी फसल में सकड़ी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारा के नियंत्रण एवं अधिक उपज हेतु क्लोडिनोफोप प्रोपाजल 15 प्रतिशत + मेटसल्फयूरॉन मिथाईल 1 प्रतिशत (मिश्रित उत्पाद) का 52 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर बुवाई के 30–35 दिन के बाद (पहली सिंचाई के बाद) 500 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें ।

कीट एवं रोग नियंत्रण : गेहूँ की खड़ी फसल में दीमक की समस्या सर्वाधिक होती है, तो उसकी रोकथाम हेतु क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी चार लीटर प्रति है. सिंचाई के साथ देवें। इसके अलावा शूट फलाई से बचने के लिये मध्य नवम्वर से मध्य दिसम्बर तक बवाई करें तथा अंकुरण के समय शूट फ्लाई का प्रकोप होने पर मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल 500 मिलीलीटर, अंकरण के तीन चार दिन के अंदर छिडकाव करें। सैन्य कीट, चने वाली लट् और पायरिला आदि की रोकथाम हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 6 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति है. भुरकें या क्यूनॉलफॉस 25 ईसी एक लीटर का प्रति है. की दर से छिड़काव करें।

गेहूँ फसल में मुख्यतः रोली रोग की समस्या होती है, इस रोग के नियंत्रण हेतु रोली रोधक किस्मों का प्रयोग करें। यदि दूसरी किस्मों का उपयोग किया गया है तो बचाव के लिए सुबह या शाम के समय 25 किलो गंधक चूर्ण प्रति है. की दर से 15 दिन के अंतर पर दो–तीन बार छिड़काव करे अथवा सवा किलो मैंकोजेब का प्रति है. की दर से 600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें। आवश्यकतानुसार यह उपचार 15–15 दिन के अंतर से दोहरायें। इसके अतिरिक्त अन्य रोग जैसे झुलसा एवं पत्ती धब्बा रोग की रोकथाम के लिए जनवरी के प्रथम सप्ताह से 15 दिन के अन्तर पर सवा किलो मैंकोजेब प्रति है. का 600 लीटर पानी में घोल बनाकर 3–4 बार छिडकाव करें।

कटाई एवं भंडारण : समय पर शून्य जुताई से बोई गई गेहूं की फसल में दाने भरने की अवधि के दौरान तापीय तनाव कम होता है, जिससे दानों का विकास अच्छा होता है और उपज में वृद्धि होती है। शून्य जुताई विधि से बोई गई गेहूं की फसल आमतौर पर 130–140 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। जब गेहूं के दानों में 15-16% नमी रह जाए, तब कटाई करनी चाहिए। इसके बाद, 10-12% नमी पर अनाज को भंडारण के लिए सुरक्षित किया जा सकता है। इस विधि से प्रति हेक्टेयर 45–50 क्विंटल तक उत्पादन संभव है।

***

चना उत्पादन में एकीकृत रोग एवं कीट प्रबंधन प्रणाली

पूनम फौजदार, खजान सिंह एवं पी.के.पी. मीना
कृषि अनुसंधान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

चना रबी ऋतु ने उगायी जाने वाली महत्वपूर्ण दलहन फसल है। विश्व के कुल चना उत्पादन का 70 प्रतिशत भारत में होता है। चने में 21 प्रतिशत प्रोटीन, 61.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 4.5 प्रतिशत वसा होती है। इसमें कैल्शियम, आयरन व नियासीन की मात्रा उत्तम होती है। हरी अवस्था में चने के दानों व पौधों का उपयोग सब्जी के रुप में किया जाता है। चने का भूसा चारे व दाना पशुओं के लिए पोषक आहार के रूप मे प्रयोग किया जाता है। देश में कुल उगायी जाने वाली दलहन फसलों का उत्पादन लगभग 17.00 मिलियन टन प्रति वर्ष होता है। चने का उत्पादन कुल दलहन फसलों के उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत होता है। देश में चने का सबसे अधिक उत्पादन मध्य प्रदेश में होता है।

जो कुल चने उत्पादन का 25.3 प्रतिशत पैदा करता है। इसके पश्चात आन्ध्र प्रदेश (15.4 प्रतिशत), राजस्थान (9.7 प्रतिशत), कर्नाटक (9.6 प्रतिशत) तथा उत्तर प्रदेश (6.4 प्रतिशत) का स्थान आता है। राज्य में चने की औसत उपज (700 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर) अन्य राज्यों जैसे आन्ध्र प्रदेश (1440 कि.ग्रा.), गुजरात (970 कि.ग्रा.), कनार्टक (930 कि.ग्रा.) व महाराष्ट्र (870 कि.ग्रा.) की अपेक्षा काफी कम है। राज्य में चने की औसत उपज कम होने के अन्य कारणों के अतिरिक्त पारम्परिक विधियों द्वारा खेती करना भी प्रमुख कारण हैं। चने की खेती उन्नत विधियों द्वारा करने पर इसकी औसत उपज में दोगुनी से अधिक बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

चने की खेती सिंचित एवं असिंचित दोनों परिस्थितियों में की जाती है। पिछले दो दशकों में सिंचाई की अतिरिक्त सुविधाओं के कारण धान और गेहूं की फसलों ने चने की कृषि योग्य क्षेत्रों को प्रतिस्थापित किया है। धान और गेहूं फसल चक्र के कारण इन खेतों की उर्वरकता में कमी आई है, साथ ही साथ जहाँ पर धान की खेती के बाद चने की फसल बोने पर चने की बुवाई देर से होती है, जिससे कि तना छेदक कीटों तथा शुष्क मूल विगलन इत्यादि का प्रकोप अधिक होते है, इसलिए समेकित नाशीजीव प्रबंधन के द्वारा पौधा संरक्षण के उपायों को अपना कर मिट्टी की उत्पदकता बढ़ाने या बनाये रखने के साथ–साथ कीटों एवं रोगों के संक्रमण से बचाया जा सकता है ताकि फसलों को कम से कम आर्थिक क्षति हों। अतः समेकित नाशीजीव प्रबंधन एक सर्वश्रेष्ठ विधि है, जिसमें पारंपारिक, यांत्रिक, जैविक एवं रासायनिक नाशीजीवानाशकों का प्रयोग इस प्रकार से किया जाता है कि नाशीजीवों का प्रकोप फसलों में कम से कम हो, और पर्यावरण को कम नुकसान पहुंचे और आर्थिक दृष्टि से स्वीकार्य हों। चना दलहनी फसल होने के कारण वातावरण से नाइट्रोजन एकत्र कर भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ाता है।

इस प्रणाली में सभी युक्तियों को सामूहिक रूप से सही क्रमवार रुप से फसलों को नाशकजीवों से बचाने के लिए होता है और ये विशेष रुप से ध्यान रखा जाता है कि रासायनिक दवाओं का कम से कम एवं अत्यंत आवश्यकता पड़ने पर ही उपयोग किया जाए।

परंपरागत विधि

- बुवाई से पहले पिछली फसल के अवशेषों को खेतों से एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।
- गर्मी के मौसम में खेतों की गहरी जुताई करने से बीज एवं मिट्टीजनित रोगों के संक्रामण से बीज एवं कीटों के लार्वा, प्यूपा एवं निम्फ नष्ट हो जाते हैं।
- यदि सम्भव हो तो उन खेतों में जहाँ रोगों का संक्रमण अधिक पाया जाता है वहां 3 वर्षो तक चने की खेती नहीं करनी चाहिए।
- गोबर की खाद (कम्पोस्ट) 5 टन/हे. की दर से प्रयोग करने पर उकठा, स्तंभ मूल एवं शुष्क मूल विगलन इत्यादि में कमी आती है।
- बुवाई अक्टूबर से पहले या नवंबर का प्रथम सप्ताह तक करने से प्रमुख रोग एवं फली छेदक कीटों के संक्रामण से बचा जा सकता है।
- जिन क्षेत्रों में स्तंभन रोग एवं अल्टरनेरिया ब्लाईट का प्रकोप ज्यादा हो वहाँ पर बुवाई देर से करनी चाहिए।
- फली छेदक के नियंत्रण में खरपतवार जैसे कि वीसिया सटाइवा को ट्रैप फसल एवं सूचक के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा मेलिलोटस अल्वा को फली नुकसान को कम करने में किया जाता है।
- फसल घनत्व कम रहने से फली छेदक तथा ग्रे मोल्ड का प्रकोप कम होता है।
- अलसी और धनिया के साथ अंतः फसलीकरण करने से फली भेदक के प्रकोप में कमी आती है साथ–साथ भारी मात्रा में सूंडियों का परजीवीकारन होता है। इसके अलावा चना + धनिया (2:2), चना + गेंदा (6:2), चना + सरसों (6:2) एवं चना + अलसी/कुसूम (4:2) की अंतः फसल करनी चाहिए।
- प्रतिरोधी/सहिष्णुता प्रजतियां का प्रयोग करें।

चने के प्रमुख कीट

फली छेदक : यह कीट प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों को खाकर फसल को हानि पहुँचाता है। फली आने पर उसमें छेद बनाकर अन्दर प्रवेश कर जाता है तथा दाने को खाकर फली को खोखला बना देता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु फसल में फूल आने से पहले तथा फली लगने के बाद एन्डोसल्फॉन 4 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियोन 2 प्रतिशत चूर्ण की 20–25 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकनी चाहिये। पानी की उपलब्धता होने पर मोनोक्रोटोफस 35 ईसी या क्यूनॉलफोस 25 ईसी की 1.25 लीटर मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से फसल में फूल आने के समय छिड़काव करना चाहिये।

दीमक : यदि बुवाई से पहले एन्डोसल्फॉनए क्यूनालफोस या क्लोरोपाइरीफोस से भूमि को उपचारित किया गया है तथा बीज को क्लोरोपाइरीफोस कीटनाशी द्वारा उपचारित किया गया है तो भूमिगत कीटों द्वारा होने वाली हानि की रोकथाम की जा सकती है। यदि खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप हो तो क्लोरोपाइरीफोस 20 ईसी या एन्डोसल्फान 35 ईसी की 2 से 3 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई के साथ देनी चाहिये। इस बात का विशेष रुप से ध्यान रखे कि दीमक के नियन्त्रण हेतु कीटनाशी का जड़ों तक पहुँचना अतिआवश्यक है।

कटवर्म : कटवर्म की लटें ढेलों के नीचे छिपी होती है तथा रात में पौधों को जड़ों के पास काटकर फसल को नुकसान पहुँचाती हैं। कटवर्म के नियंत्रण हेतु मिथाइल पैराथियोन 2 प्रतिशत या क्यूनालफोस 1.50 प्रतिशत या एन्डोसल्फान 4 प्रतिशत चूर्ण की 25 किलोग्राम मात्रा को प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव शाम के समय करना चाहिये। इसके नियंत्रण के लिए ट्राईक्लोरोफॉन 5 प्रतिशत चूर्ण की 25 कि.ग्रा. मात्रा को भी प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव किया जा सकता है।

चने के प्रमुख रोग

झुलसा रोग : यह रोग एक फफूंद के कारण होती है। इस रोग के कारण पौधें की जड़ों को छोड़कर तने पत्तियों एवं फलियों पर छोटे गोल तथा भूरे रंग के धब्बे बन जाते है। पौधे की आरम्भिक अवस्था में जमीन के पास तने पर इसके लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। पहले प्रभावित पौधे पीले व फिर भूरे रंग के हो जाते है तथा अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब नामक फफूंदनाशी की 1 कि.ग्रा. या घुलनशील गन्धक की 1 कि.ग्रा. या कबपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि.ग्रा.मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये। इसमें 10 दिनों के अन्तराल पर 3–4 छिड़काव करने पर्याप्त होते हैं।

उखटा रोग : इस रोग के लक्षण जल्दी बुवाई की गयी फसल में बुवाई के 20–25 दिनों बाद स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। इस रोग के लक्षण देरी से बोई गयी फसल में फरवरी व मार्च में दिखाई देते हैं। इससे प्रभावित पौधे पहले पीले रंग के हो जाते हैं तथा नीचे से ऊपर की ओर पत्तियाँ सूखने लगती हैं, अन्ततः पौधा सूखकर मर जाता है। इस रोग के नियन्त्रण हेतु भूमि में नमी की कमी नही होनी चाहिये। यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही सिंचाई कर देनी चाहिये तथा रोग रोधी किस्मों जैसै आरएसजी 888, ए सी 235 तथा बीजी 256 की बुवाई करनी चाहिये।

किट्ट रोग : इस रोग के लक्षण फरवरी व मार्च में दिखाई देते हैं। इसमें पत्तियों की ऊपरी सतह पर फलियों, पर्णवृतों तथा टहनियों पर हल्के भूरे काले रंग के उभरे हुए चक्त्ते बन जाते हैं। इस रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब नामक फफूंदनाशी की 1 कि.ग्रा. या घुलनशील गन्धक की 1 कि.ग्रा. या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 1.30 कि.ग्रा. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

यांत्रिक प्रबंधन

- फली भेदक कीट की निगरानी हेतु 5 फेरोमोन ट्रैप/हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए। फेरोमोन ट्रैप में 4–5 नर पतंगे/ट्रैप/रात्रि आ जाने पर सामान्यतः 14 दिन पश्चात् कीट की संख्या आर्थिक हानि स्तर तक पहुँच जाती है। हेलिकोवेरपा कीट के संदर्भ में संख्या आर्थिक हानि स्तर 1 सुंडी प्रति 1.5 मी. फसल लाइन है या 5 प्रतिशत ग्रसित फली या 8–10 मौथ/ट्रैप/लगातार 3 रात्रि तक। इस कीट का नियंत्रण कीट के आर्थिक हानि स्तर पर पहुँचते ही तुरंत कर देना चाहिए अन्यथा कीट की संख्या आर्थिक हानि स्तर से अधिक हो जाने पर कीट नियंत्रण की लागत अत्यधिक हो सकती है। अतः जैसे ही आर्थिक हानि स्तर आता है उसी समय कीट नियंत्रण की विधियाँ अपनाना लाभकारी होता है।
- नियंत्रण फसल की निगरानी करने से उकठा एवं सड़न से प्रभावित पौधों का अनुमान प्रारंभिक अवस्था में ही लग जाता है, जिससे समय पर सही रासायनिक दवाओं के प्रयोग हेतु चुनाव में आसानी रहती है तथा मित्रकीट की संख्या का स्तर भी सही बना रहता है।
- पक्षियों को आकर्षित करने के लिए T आकार के 3–5 फीट लंबे 20 खूँटी/हेक्टेयर लगाने चाहिए, जिससे कीटभक्षी पक्षियों को शिकार करने में सहायता पहुंचे। कुछ कीट भक्षी पक्षी बूबूलक्स इबीस, एक्रीडोथेरस ट्रिस्टिस, पेशन डोमेष्टिक्स, सिटेकुला क्रमेरी इत्यादि हैं।

जैविक कीट प्रबंधन

- चने के रोगों के रोकथाम के लिए सूक्ष्मजीवीय जीवनाशक जैसे ट्राईकोडर्मा एवं सूडोमोनास का उपयोग बीजोपचार के लिए करना चाहिए।
- खेतों में एनपीवी, बीटी का प्रयोग करें। एचएएनपीवी/250 एल/ई/हे. (1×109 पीओबी) अकेले या टिनोपाल (0.1 प्रतिशत पराबैंगनी किरणों के प्रभाव को रोकने के लिए) उपयोग करना चाहिए। अन्य समय के अपेक्षा शाम के समय में छिड़काव करने से अधिक प्रभावी होता है। बीटी फार्मूलेशन का 1.0–1.5 किलो ग्राम/हे. के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।
- इस फसल में प्राळतिक शत्रु का अध्ययन मुख्यतः हेलिकोवर्पा पर केन्द्रित है। इस फसल पर अम्ल की उपस्थिति के कारण अंडा परजीवी ट्राईकोग्रमा नहीं मिलते हैं। कैम्पोलेटिस क्लोरिडी, यूसेलाटोनिया ब्रायेनी और कारसेलिया इलोटा के साथ जैविक नियंत्रण में सीमित सफलता प्राप्त हुई है।

रासायनिक नियंत्रण : वर्तमान में रासायनिक दवाओं का उपयोग नाशीजीव कीट एवं रोगों से ग्रसित पौधों को बचाने के लिए किया जा रहा है। हमारे देश में कुछ प्रदेशों में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग हो रहा है जिसकी आवश्यकता नहीं है। इससे न केवल नाशीजीव कीट एवं रोगों के प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है बल्कि इसका बुरा असर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हमारे देश से होने वाले चने के निर्यात पर पड़ता है। अतः आवश्यकता पड़ने पर ही रासायनिक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए तथा एक ही रासायनिक दवा का प्रयोग करें और इस बात का विशेष रुप से ध्यान रखें कि एक ही रासायनिक दवा के बार–बार उपयोग करने के बजाय दवाओं को अदल–बदल कर विभिन्न तरह गुणों वाली दवाओं का प्रयोग करना चाहिए। यदि आर्थिक दृष्टि से संभव हो तो नये एवं प्रभावकारी कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिए। कीटनाशकों के कई समूह प्रमुख कीटों के खिलाफ कीटनाशकों का संयोजन प्रभावी पाए गये हैं। प्रतिरोधी उत्पन्नता, पुनरुत्थान और द्वितीयक प्रकोपों के कारण कीटनाशकों का संयोजन प्रभावी पाया गया है। विशेषकर नीम पर आधारित कीटनाशकों, जैविक कीटनाशकों जैसे बीटी और एनपीवी का सम्मिलित प्रभाव होता है। इमामेकटीन 0.02 प्रतिशत मात्रा पहली बार फूल खिलने के प्रारंभिक अवस्था में और दूसरी बार 15 दिनों के पश्चात् छिड़काव करने से फली छेदक का प्रकोप रूक जाता है। इसके अलावा साइप्रमेथ्रिन या क्लोरपाइरिफ़ास या फेनबेलरेट का भी प्रयोग किया जा सकता हैं।

निष्कर्ष : चना एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जो न केवल मानव पोषण का मुख्य स्रोत है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य सुधारने में भी सहायक है। किंतु इसकी उत्पादकता पर कीट, रोग और खरपतवारों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि इन कारकों का समय एवं समन्वित तरीके से प्रबंधन न किया जाए, तो फसल की उपज व गुणवत्ता दोनों गंभीर रूप से प्रभावित हो सकते हैं।

एकीकृत प्रबंधन प्रणाली एक ऐसी समग्र कृषि पद्धति है, जिसमें जैविक, यांत्रिक, सांस्कृतिक एवं रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग किया जाता है। समन्वित रोग, कीट एवं खरपतवार नियंत्रण प्रणाली अपनाने से फसल को होने वाली जैविक हानियों में उल्लेखनीय कमी आती है, जिससे पौधे स्वस्थ रहते हैं और उत्पादन में 20-30 % तक की वृद्धि संभव होती है। इस प्रणाली में जैविक नियंत्रण विधियाँ (जैसे ट्राइकोडर्मा, एनपीवी, ट्राइकोग्रामा) एवं सांस्कृतिक तकनीकें (जैसे फसल चक्र, गहरी जुताई, समय पर बुवाई) अपनाकर रसायनों का न्यूनतम प्रयोग किया जाता है, जिससे पर्यावरण व मृदा की गुणवत्ता बनी रहती है। रसायनों के सीमित प्रयोग और अधिक उपज के कारण उत्पादन लागत में कमी आती है और किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। साथ ही, जैविक उत्पादों की मांग के कारण बाजार में बेहतर मूल्य भी मिल सकता है। कीट व रोगों से मुक्त फसलें दानेदार, स्वच्छ व अधिक प्रोटीन युक्त होती हैं, जिससे बाजार में उनकी स्वीकार्यता बढ़ती है। यह प्रणाली पर्यावरण को प्रदूषित किए बिना फसल की सुरक्षा प्रदान करती है, जिससे जल, वायु और मृदा की गुणवत्ता बनी रहती है। साथ ही, परागणकारी कीटों व प्राकृतिक शत्रुओं को संरक्षण मिलता है। समन्वित प्रणाली अपनाने के दौरान किसानों को वैज्ञानिक तकनीकों, फसल की पहचान, नियंत्रण उपायों और समयबद्ध क्रियान्वयन की जानकारी होती है, जिससे उनकी कृषि दक्षता बढ़ती है।

❋❋❋

रबी फसलों का एकीकृत रोग प्रबंधन

दिनेश चंद, कमलेश चरपोटा, ज्योति झिरवाल एवं राजेन्द्र कुमार शर्मा
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

एकीकृत रोग प्रबंधन विभिन्न संदर्भों में रोगों को नियंत्रित और प्रबंधित करने के लिए एक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण को संदर्भित करता है। इसमें रोग रोकथाम, निदान, उपचार और निगरानी के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करने के लिए विभिन्न रणनीतियों, अनुशासनों और तकनीकों को एकीकृत करना शामिल है। विभिन्न विधियों और दृष्टिकोणों को संयोजित करके, एकीकृत रोग प्रबंधन के प्रयासों को अनुकूलित करने और व्यक्तियों, समुदायों और कृषि प्रणालियों पर रोगों के प्रभाव को न्यूनतम करने का उद्देश्य रखता है। यह बहुआयामी दृष्टिकोण रोगों की जटिल प्रकृति को पहचानता है और जैविक, पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक कारकों पर विचार करते हुए प्रभावी समाधान प्रदान करने का प्रयास करता है। रोगों द्वारा उत्पन्न होने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए एकीकृत रोग प्रबंधन प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। आधुनिक समाकलित रोग प्रबंधन एक ऐसी प्रणाली है जोकि महत्वपूर्ण बिंदुओं कई रणनीतियों को ध्यान में रखकर अपनाई जाती है, जिसमें सांस्कृतिक प्रथाएँ, मेजबान प्रतिरोध, जैविक नियंत्रण, भौतिक नियंत्रण और रासायनिक नियंत्रण जैसे कि फफूंदनाशक एवं कीटनाशकों का उपयोग भी शामिल है। एकीकृत रोग प्रबंधन का उद्देश्य आर्थिक व्यवहार्यता, पर्यावरणीय संरक्षण और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन बनाना है।

एकीकृत रोग प्रबंधन के सिद्धान्त

1 **बहुविभागीय दृष्टिकोण :** एकीकृत रोग प्रबंधन (आईडीएम) में विभिन्न रणनीतियों और तरीकों का एकीकरण शामिल है, जैसे कि सांस्कृतिक, जैविक और रासायनिक इत्यादि विधियाँ सम्मिलित है ताकि पौधों में लगने वाले रोगों का सही ढग से नियत्रण किया जा सके।

2 **प्रारंभिक पहचान और रोकथाम :** रोगों की प्रारंभिक पहचान पौधे की नई पत्तियों के द्वारा की जाती है शुरुआती रोग लक्षण पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देने लगते हैं साथ ही पत्तियों का रंग पीला दिखाई पड़ता है बाद में रोगलक्षण पौधों के निम्न भागों जैसे तना जड़ अत्याधिक पर फैल जाते है।

3. **मेजबान प्रतिरोध :** प्रतिरोधी पौधों की किस्मों का प्रजनन और चयन एकीकृत रोग प्रबंधन का एक प्रमुख सिद्धांत है, क्योंकि यह रासायनिक फफूंदनाशक एवं कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करता है और रोगों के खिलाफ दीर्घकालिक सुरक्षा प्रदान करता है।

4. **सांस्कृतिक विधिएँ :** पौधों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और रोग की संवेदनशीलता को कम करने के लिए उचित फसल की दूरी, पोषक तत्व प्रबंधन और उपयुक्त सिंचाई जैसी विधिएँ उपयोग में ली जाती है।

5. **जैविक नियंत्रण :** पौधे के रोगजनकों को दबाने के लिए प्राकृतिक दुश्मनों और लाभकारी सूक्ष्मजीवों का उपयोग एकीकृत रोग प्रबंधन (आईडीएम) का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल रोग प्रबंधन को बढ़ावा देता है।

6. **रासायनिक नियंत्रण :** पौधों में होने वाले रोगों को नियंत्रित करने के लिये विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाता है जैसे कवकनाशी, जीवाणुनाशी इत्यादि।

रबी फसलों में एकीकृत रोग प्रबंधन

1. **सांस्कृतिक विधि :** यह विधि एकीकृत रोग प्रबंधन मे काफी महत्वपूर्ण है। इस विधि मे फसल–चक्र, गहरी जुताई, उचित स्वच्छता, रोपण घनत्व का प्रबंधन, पर्याप्त सिंचाई और उचित जल निकास की व्यवस्था, प्रमाणित रोग–मुक्त बीजों का उपयोग करना और खरपतवार नियंत्रण इत्यादि क्रियाए सम्मिलित है। सांस्कृतिक विधि रोगाणुओं के लिए प्रतिकूल परिस्थितियां एवं स्थितियां बनाए रखने के लिए और सहनशीलता को बढ़ावा देने में मदद करती हैं। सांस्कृतिक विधियों के निम्न उदाहरण इस प्रकार है।

- **फसल–चक्र :** फसलों का चक्रीकरण रोग चक्र को तोड़ने में मदद करता है क्योंकि यह एक मेजबान फसल की निरंतर उपस्थिति को बाधित करता है। विभिन्न फसलों की रोगों के प्रति अलग–अलग संवेदनशीलता होती है, इसलिए फसलों का चक्रीकरण रोगाणुओं के निर्माण और फैलाव को कम करता है।
- **गहरी जुताई :** गहरी जुताई करने से मिट्टी में संक्रमित फसलों के अवशेष दब जाते है जिससे मिट्टी से उत्पन्न रोगजनकों के जीवित रहने और उनके फैलाव को कम करने के लिए किया जा सकता है। गहरी जुताई करने से अगली फसल में होने वाले संक्रमण को काफी हद तक रोका जा सकता है।
- **प्रतिरोधी किस्मों की रोपाई :** रोग–प्रतिरोधी किस्मों का चयन और रोपाई करना रोगों के प्रभाव को कम करने का एक प्रभावी तरीका है। प्रतिरोधी किस्मों में ऐसे आनुवंशिक गुण होते हैं जो उन्हें विशेष रोगाणुओं के प्रति कम संवेदनशील या सहिष्णु बनाते हैं, जिससे रासायनिक नियंत्रण उपायों की आवश्यकता कम होती है।
- **खरपतवार नियंत्रण :** एकीकत रोग प्रबंधन में खरपतवार नियंत्रण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खरपतवार नियंत्रण करके वैकल्पिक या सहायक मेजबानों को समाप्त समाप्त किया जाता है जोकि ऑफ–सीजन के दौरान रोगजनक का आश्रय ना दे सके। कीट वाहकों जैसे कि एफिड्स, सफेद मक्खी और पतंगे खरपतवारों पर आश्रय एवं प्रजनन जैसी इत्यादि क्रियाए करते है जो वायरल और बैक्टीरियल बीमारियों को फैलाने में सहायक होते है इसलिए खरपतवार नियंत्रण करना बहुत आवश्यक है।

2. **जैविक नियंत्रण :** यह रोग प्रबंधन की महत्वपूर्ण विधि है जिसमें रोगों को नियंत्रित करने के लिए प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है जैसे फफूंद, बैक्टीरिया, वायरस, परजीवी नेमाटोड्स और अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीव इत्यादि। ये जैविक नियंत्रण एजेंट रोग चक्र को बाधित कर देते है, जिससे रोगकारकों की गतिविधियाँ रुक जाती है। प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले सूक्ष्मजीव भी रोगकारकों के विकास को रोकने में सहायक होते है। एकीकृत रोग प्रबंधन प्रणाली में जैव नियंत्रण एजेंटों का उपयोग मुख्य घटक के रूप में किया जाता है उदाहरण : *बैसिलस सबटिलिस, प्सेउडोमोनास फ्लोरेसेंस, ग्लायोक्लेडियम स्पीसीज* इत्यादि।

3. **रासायनिक नियंत्रण :** रासायनिक नियंत्रण में पौधों की बीमारियों का प्रबंधन करने के लिए कीटनाशी, कवकनाशी और जीवाणुनाशी का सामान्यत उपयोग किया जाता है। ये रासायनिक नियंत्रण रोगजनकों को मारने, उनके विकास को रोकने और बीमारियों की गंभीरता को कम करने के लिए उपयोग किए जाते हैं।

1 रासायनिक नियंत्रण में विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाता है।
2 कवकनाशी : कवक जनित रोगों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग की जाती है।
3 जीवाणुनाशी : जीवाणु जनित रोगों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग की जाती है।
1 कीटनाशी: कीटों को मारने के लिए उपयोग की जाती है।

4. भौतिक नियंत्रण

- **ताप उपचार :** मिट्टी, पौधों की सामग्री, या उपकरणों का उपचार करने के लिए गर्मी का प्रयोग किया जा सकता है ताकि रोगाणुओं को समाप्त किया जा सके। तापमान की व्यवस्थाएँ सावधानीपूर्वक चुनी जाती हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि रोगाणु प्रभावी रूप से मारे जाए बिना उपचारित सामग्री को नुकसान पहुचाए।
- **गर्म पानी का उपचार :** गर्म पानी का उपचार बीज–जनित रोगजनकों, विशेष रूप से बैक्टीरिया और वायरस के नियंत्रण के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इस विधि में संक्रमित बीजों को निर्धारित समय एवं तापमान पर गर्म पानी में डुबोया जाता है। गोभी के बीज का गर्म पानी उपचार 52°C पर 1 5–2 0 मिनट के लिए काले सड़न रोग (जो जैंथोमोनेस कैंपेस्ट्रिस पैथोवार कैंपेस्ट्रिस द्वारा होता है) को नियंत्रित करता है।
- **मिट्टी की सौरकरण :** इस विधि में मिट्टी को काले रंग की प्लास्टिक चादरों से ढक दिया जाता है ताकि मिट्टी के तापमान 50°C तक बढ़ाया जा सके, जिससे जो मिट्टी में उपस्थित कई प्रकार के रोगकारकों को आसानी से नष्ट किया जा सकता है जैसे कि रिजोक्टोनिया सोलानी, फ्यूजेरियम प्रजातियाँ, स्क्लेरेटियम आदि। यह विधि खरपतवार नियंत्रण में भी सहायक होती है।

❋❋❋

नैनो डीएपी: रबी फसलों की उपज बढाने में सहायक

ए.पी. सिंह, लाला राम एवं सुधीर मान
इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड, जयपुर

नैनो डीएपी : उर्वरक क्षेत्र में एक क्रांति

नैनो डीएपी, फसलों को फॉस्फोरस उपलब्ध कराने का एक बेहतर विकल्प है। नैनो डीएपी एक नैनो उर्वरक है जिसे भारत सरकार द्वारा 02 मार्च, 2023 को FCO (1985) के अन्तर्गत अधिसूचित किया गया है। नैनो डीएपी एक नैनो सम्पूरण है जिसमें नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस एनकैप्सूलेटेड नैनो रुप में मौजूद है। नैनो डीएपी में 8% नत्रजन तथा 16% फॉस्फोरस होता है। नैनो डीएपी की प्रभावशीलता इसके आयतन की तुलना में अधिक सतही क्षेत्रफल के कारण है क्योंकि इसके कणों का आकार 100 नैनोमीटर से कम होता है। इस विशिष्टेता के कारण यह बीज/जड़ की सतह से या पत्तियों (स्टो मेटा) तथा अन्यव छिद्रों के माध्यवम से पौधों में आसानी से प्रवेश कर जाता है। नैनो डीएपी तरल में नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस के नैनो समूह को बायो–पॉलीमर और अन्य अनुद्रव्यों के द्वारा क्रियाशील किया गया है। नैनो डीएपी का उपयोग करके उपज बढाने के साथ–साथ मिट्टी में स्वास्थ्य को भी सुधारा जा सकता है। नैनो डीएपी पर वैज्ञानिक परीक्षणो तथा किसानों के खेत पर लगाये गये प्रदर्शनो में फसलों की उपज में 5 से 15 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गई है।

नैनो डीएपी, क्यों है जरुरी?

फॉस्फोरस पौधों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन के बाद दूसरा सबसे जरूरी पोषक तत्वों में से एक है। फॉस्फोरस जमाव,जड़ विकास, पुष्पन, बीज निर्माण, प्रकाश संश्लेषण और, ऊर्जा स्थानांतरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही साथ फसलों द्वारा अन्य पोषक तत्वों को ग्रहण की क्षमता को बढ़ाता है। इसके महत्व के बावजूद, देश में फॉस्फोरस की उपलब्धता एक बड़ी समस्या बनी हुई है। भारत में फॉस्फोरस की उपलब्धता मुख्य रूप से दो कारकों से प्रभावित होती है। पहला, देश में फॉस्फोरस की घरेलू उपलब्धता कम है और दूसरा, फॉस्फोरस की दक्षता (Fertiliser Use Efficiency) का कम होना. फॉस्फोरस की दक्षता का कम होने का मुख्य कारण, मिट्टी का पीएच मान का कम या ज्यादा होना, मिट्टी में मौजूद अन्य खनिजों (कैल्सियम, लोहा तथा एल्युमीनियम) की मात्रा, और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थो तथा नमी की मात्रा का कम होना। मिट्टी में यह तत्व स्थिर हो जाता है, जिससे पौधे को फॉस्फोरस का सिर्फ 15–20 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध नहीं हो पाता। बाकी फॉस्फोरस मिट्टी में मौजूद कैल्शियम, एल्युमिनियम या आयरन के साथ मिलकर अघुलनशील (न घुलने वाला) हो जाता है, जिससे पौधे इसे इस्तेमाल नहीं कर पाते। इस वजह से किसानों को जरूरत से ज्यादा फॉस्फोरस डालना पड़ता है, जो मिट्टी में जमा हो जाता है तथा जमीन सख्त हो जाती है अथवा बारिश के पानी के साथ बहकर नदियों और झीलों में पहुंच जाता है। यह पानी में शैवाल की अत्यधिक वृद्धि का कारण बनता है, जिससे जलीय जीवन और पानी की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है। इसके अलावा, फॉस्फोरस एक सीमित संसाधन है, जो दुनिया के कुछ ही देशों में पाए जाने वाले फॉस्फेट चट्टानों से निकाला जाता है। बढ़ती आबादी और खाद्य उत्पादन की मांग के साथ, फॉस्फोरस का कुशल इस्तेमाल करना टिकाऊ कृषि के लिए बहुत जरूरी हो गया है।

नैनो डीएपी का उपयोग विधि :

नैनो डीएपी का उपयोग दो चरणों में किया जाता है।

- प्रथम चरण में नैनो डीएपी का उपयोग बीज अथवा जड़ उपचार के द्वारा किया जाता है।
- बीज उपचार के लिये 2.5 से 20 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति किलो ग्राम बीज किया जाता है।
- जिन फसलों (जैसे–गेंहू, जौ, चना, मसूर, मटर, मेथी, जीरा इत्यादि) के बीज का आकार बड़ा होता है, उनमें 2.5 से 5 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचार किया जाता है।
- जिन फसलों (जैसे– सरसों, तारामीरा, अलसी इत्यादि) के बीज का आकार छोटा होता है, उनमें 10 से 20 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचार किया जाता है।
- रोपित की जाने वाले फसलों (जैसे– गोभी, टमाटर, बैंगन इत्यादि) के पौध को उपचारित करने हेतु 10 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति लीटर पानी के घोल में 30 मिनट तक डुबाकर रखें के उपरांत रोपण करें।
- आलू, प्याज, लहसुन इत्यादि फसलों के कंद, क्लोव इत्यादि को उपचार करने हेतु 10 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति लीटर पानी के घोल को स्प्रे के माध्यम से करें। एक एकड़ खेत के लिए ½ से 1 बोतल नैनो डीएपी का उपयोग करें।
- दूसरे चरण में नैनो डीएपी का पहला छिडकाव खड़ी फसल में बुआई के 35–40 दिन बाद (कल्ले/शाखायें बनने की अवस्था में) तथा बेहतर परिणाम के लिये दूसरा छिडकाव बुआई के 20–25 दिन के अंतराल (फूल आने या फल/दाने बनने के एक सप्ताह पूर्व) छिडकाव करना चाहिये। छिड़काव के लिये 2.5 से 5 मिलीलीटर नैनो डीएपी प्रति लीटर पानी की दर से करें।

उपयोग दिशा–निर्देश तथा सावधानियाँ

- यदि नैनो डीएपी का उपयोग करते समय, पारम्परिक डीएपी की मात्रा को 25–50 प्रतिशत तक कम उपयोग कर सकते हैं।
- उपयोग से पहले बोतल को हल्के से हिला का मिलाना चाहिये।
- बीज उपचार अथवा स्प्रे के समय दास्तानो का उपयोग करना चाहिये।
- नैनो डीएपी को आसानी से अन्य नैनो उर्वरकों, 100% पानी में घुलनशील उर्वरकों (Water soluble fertilisers) और कृषि रसायनों (Pesticides) के साथ मिलाकर उपयोग कर सकते हैं, लेकिन हमेशा मिश्रण और छिड़काव से पहले जार परीक्षण अवश्य करें।

- जार परीक्षण करना बहुत आसान है। सबसे पहले हम एक लीटर पानी लेते हैं उसमें जो भी उत्पाद मिला कर स्प्रे करना चाहते हैं, उनकी मात्रा प्रति लीटर पानी की दर से बारी बारी लेते हैं तथा पानी में मिला देते हैं और यदि वे पूरी तरह से पानी में घुल जाते हैं तो उनका एक साथ स्प्रे किया जा सकता है तथा यदि वे पूरी तरह से पानी में नही घुलते हैं अथवा कोई अवक्षेप बन जाता है तो उनका एक साथ स्प्रे नहीं किया जा सकता है।
- स्प्रे के लिये केवल फ्लेट फैन अथवा कट नोजल का ही उपयोग करना चाहिये।
- नैनो उर्वरकों के घोलों का छिड़काव खुले मौसम में दिन में कभी भी कर सकते हैं इस बात का ध्यान दें कि तेज हवा न चल रही हो, अत्यधिक कड़ी धूप न हो, ओस सूख गयी हो तथा बरसात होने की सम्भावना न हो। वैसे सुबह अथवा शाम के समय छिड़काव करना अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि पत्तियों पर स्थित रंध्र (Stomata) अधिक खुला रहता है।
- यदि नैनो उर्वरकों के छिड़काव के 12 घंटे के भीतर बारिश होती है, तो यह सलाह दी जाती है कि छिड़काव को दोहराया जाना चाहिए।
- बेहतर परिणाम के लिए नैनो उर्वरकों का उपयोग इसके निर्माण की तारीख से 2 साल के अंदर किया जाना चाहिए।

नैनो डीएपी के साथ बेहतर उपज तथा सुरक्षित भविष्य : जैसे–जैसे दुनिया में खाद्य उत्पादन की मांग बढ़ रही है, पोषक तत्वों के कुशल प्रबंधन की जरूरत भी बढ़ती जा रही है। नैनो डीएपी जैसी उच्च तकनीक को अपनाकर, किसान न सिर्फ फसलों की पैदावार बढ़ा सकते हैं, बल्कि अपने जमीनध्खेत की दशा को भी कर सकते हैं।

नैनो डीएपी के उपयोग किसान फॉस्फोरस की पूरी क्षमता का इस्तेमाल कर सकते हैं, बर्बादी को कम कर सकते हैं, मिट्टी की उर्वरता बढ़ा सकते हैं, और वैश्विक खाद्य सुरक्षा को मजबूत कर सकते हैं। आने वाले समय में, नैनो उर्वरकों पर आधारित उर्वरकों का उपयोग कृषि में आम हो जाएगा, जिससे टिकाऊ खेती का सपना साकार होगा।

सिंचाई की नवीन तकनीक ''ऐब एण्ड फ्लो'' विधि: सब्जी उत्पादन हेतु स्वचालित पोषक तत्व वितरण प्रणाली

राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र कुमार यादव एवं विनोद कुमार यादव
कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेडा, कोटा

पौधों की सभी शारीरिक प्रक्रियाएँ जल पर निर्भर करती हैं, इसलिए पौधों की पत्तियों व जड़ों का 80-95% जैवभार पानी से बना होता है। पौधों की वृद्धि एवं विकास काफी हद तक उचित सिंचाई प्रणाली एवं पोषण के चयन पर निर्भर करता है। पानी और उर्वरक की खपत को अनुकूलित करने व उत्पादन लागत को कम करने हेतु पौधों की खेती के लिए बंद सिंचाई प्रणाली का सुझाव दिया जाता है। ऐब एवं फ्लो सिंचाई (Ebb and Flow Irrigation) एक हाइड्रोपोनिक पद्धति का ही स्वरूप है, जो पौधों की जड़ों को पोषक तत्वों से भरपूर पानी से भरती है और फिर उसे निकाल देती है। यह प्रक्रिया स्वचालित रूप से नियंत्रित होती है और पौधों को सही मात्रा में पानी और पोषक तत्व प्रदान करती है। ऐब व फ्लड पोषक तत्व वितरण प्रणाली (ई एण्ड एफ) के कई विशिष्ट लाभ हैं जैसे गमले में लगे पौधों में ऊपर से बिना पानी दिये सिचांई करना गमले की सतहों पर किटाणुं और रोगों को कम करना आदि। इसमें ऊर्जा की बचत, पानी के उपयोग की दक्षता में वृद्धि। ऐब व फ्लो सिंचाई जिसे, फ्लड और ड्रेन के रूप में भी जाना जाता है। जड़ क्षेत्र में पानी की स्थिति की एक नियंत्रणीय सीमा बनाए रखने के लिए चक्र दोहराया जाता है। यह प्रणाली पौधों को आवश्यक पोषक तत्व के साथ–साथ ऑक्सीजन भी प्रदान करती है, फसल की वृद्धि को बढ़ावा देती है एवं ऊर्जा की भी बचत करती है।

ऐसे कार्य करता है ऐब एवं फ्लो सिस्टम

ऐब एवं फ्लो सिंचाई, जिसे बाढ़ व निकासी (Flood & Drain) प्रणाली भी कहा जाता है, एक ऐसी तकनीक है जिसमें पौधों को जल व पौषक तत्व नीचे से दिए जाते हैं। यह प्रणाली इस प्रकार कार्य करती है।

1. पोषक तत्वों से युक्त जल एक जलाशय में भरा होता है।
2. एक पंप या स्वचालित प्रणाली का उपयोग करके, जलाशय से पोषक तत्वों से युक्त पानी पौधों की जड़ों को ढंकने के लिए ट्रे या कंटेनर में भेजा जाता है।
3. पौधे अपनी जड़ों के माध्यम से पोषक तत्वों को अवशोषित करते हैं।
4. एक निश्चित समय के पळचात, अतिरिक्त जल व पोषक तत्व जलाशय में पुनः चले जाते हैं।
5. ऑक्सीजनेशनः यह प्रक्रिया पौधों की जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन प्रदान करती है।
6. चक्र दोहरानाः यह प्रक्रिया बार–बार दोहराई जाती है, जिससे पौधों को लगातार पोषक तत्व तथा ऑक्सीजन मिलते रहते हैं।

इस प्रणाली में पौधे रखने के लिए कई कंटेनर या सिर्फ एक कंटेनर भी हो सकता है, जिसे एक ग्रो ट्रे पर व्यवस्थित किया जाता है, जैसा कि आप चित्र में देख सकते हैं।

इसे एक टाइमर द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जो पानी पंपिंग चक्र को नियंत्रित करता है। जब टाइमर सक्रिय होता है, तो सबमर्सिबल फाउंटेन पंप पानी और पोषक तत्वों को फव्वारे में पंप करना शुरू कर देता है। पोषक तत्व तब कंटेनर (ग्रो ट्रे) के शीर्ष पर उठते हैं। पौधों की जड़ों को तब तक डुबोकर रखते हैं जब तक कि वे पानी की अधिकतम मात्रा तक नहीं पहुँच जाते। सिस्टम में पोषक तत्व एवं पानी का निरंतर संचलन एक निश्चित समय के लिए पूर्व निर्धारित स्तर पर बनाए रखा जाता है, इस समय, ओवरफ्लो ट्यूब यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि मानक जल स्तर किसी भी तरह से उपर नीचे न हो। इसके अलावा, यह ट्यूब पोषक तत्व एवं पानी को जलाशय से बाहर निकलने से रोकती है, जबकि संचलन के दौरान पंप चालू रहता है। जब टाइमर बंद हो जाता है, तो पंप बंद हो जाता है, और टैंकों में पोषक तरल का प्रवाह बंद हो जाता है। जैसे ही यह जल निकासी प्रणाली से टकराता है, यह वापस जल भंडार में बहना शुरू हो जाता है।

ईब और फ्लो में वातन

आपको यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सिस्टम को पर्याप्त मात्रा में वायु प्रवाह प्राप्त हो। उर्वरक घोल में थोड़ी मात्रा में हवा शामिल की जा सकती है क्योंकि यह जलाशय में वापस गिरती है, जिसे कुछ बागवान पसंद करते हैं। यदि पोषक तत्व भंडार में अपर्याप्त ऑक्सीजन है, तो एक एयर पंप शामिल करना सुनिश्चित करें। बैकफ्लो को रोकने के लिए ओवरफ्लो ट्यूब पानी की एंट्री ट्यूब से लंबी और चौड़ी होनी चाहिए।

इस प्रणाली में प्रयुक्त वृद्धि माध्यम

इस प्रणाली के भीतर वृद्धि माध्यम के प्रभावी होने के लिए दो अलग–अलग मानदंड आवश्यक हैं जो जल भराव के दौरान जड़ क्षेत्र के आधार को संतृप्त करने के लिए सिंचाई जल प्रदान करते हैं। पहला है जड़ श्वसन के लिए न्यूनतम वायु प्रदान करना। सिंचाई का पानी वृद्धि माध्यम से भरे कंटेनर के निचले 1–2 सेमी को संतृप्त करता है तथा इससे जल निकासी के पळचात जड़ों को ऑक्सीजन की उचित आपूर्ति करता है। पीट और कॉयर पिथ जैसी अत्यधिक जल अवशोषित करने वाले वृद्धि माध्यमों को आसानी से अधिक सिंचाई की जा सकती है। इसलिए, बहुत कम संतृप्ति प्रतिशत वाली सामग्री जैसे कि परलाइट और लकड़ी के फाइबर, को E&F वृद्धि माध्यमों में मिलाया जाना चाहिए। दूसरे मानदंड के लिए आवश्यक है कि वृद्धि माध्यम को सिंचाई चक्र की अवधि के भीतर कंटेनर के शीर्ष पर जल्दी से फिर से संतृप्त किया जाए (यानी, सिंचाई के पानी को ले जाया जाए)।

ऐब एण्ड फ्लो विधि के लाभ

- पौधों के लिए पोषक तत्वों की प्रचुरता हर समय उपलब्ध रहती है। तकनीक यह सुनिश्चित करती है कि आपके पौधों को पोषक तत्वों की सही मात्रा मिले। ओवरफ्लो ट्यूब की वजह से, कंटेनरों में पानी भरना असंभव है। नतीजतन पौधों को स्वस्थ बनाये रखने के साथ–साथ परिपक्व होने का अवसर मिलता है। यह प्रणाली पानी व पोषक तत्वों का कुशलतापूर्वक उपयोग करती है।
- इसका निर्माण आसान है। बाढ़ और नाली हाइड्रोपोनिक्स अन्य प्रकार के हाइड्रोपोनिक्स की तुलना में कम खर्चीली है। जल निकासी चरण के दौरान, जड़ें हवा के संपर्क में आती हैं और जड़ों के हाइपोक्सिया को रोकने में मदद करने के लिए पर्याप्त अबक्सीजन को अवशोषित कर सकती हैं।
- इसे संचालित करना आसान है। सिस्टम को कॉन्फिगर करने के बाद प्रक्रिया का सबसे कठिन पहलू पूरा हो जाता है। बाकी सब कुछ सरल है, क्योंकि इसमें निगरानी और रखरखाव की न्यूनतम आवश्यकता होती है। जब सिस्टम का उपयोग करने की बात आती है, तो तकनीकी सहायता की बहुत कम आवश्यकता होती है।
- नियमित रूप से गीला और सूखा बारी–बारी से जड़ों में रोग और सड़न को रोकने में मदद मिलती है।
- पौधों को आवश्यक पानी और पोषक तत्व प्रदान करके बेहतर फसल वृद्धि को बढ़ावा देती है।
- पौधों को ऊपर से पानी देने के बजाय नीचे से पानी देने से फफूंद और बीमारियों का खतरा कम हो जाता है।
- सिस्टम को साफ रखना आसान होता है।
- इसका उपयोग जड़ी–बूटियों से लेकर सब्जियों तक विभिन्न प्रकार के पौधों की खेती के लिए किया जा सकता है।

सब्जियाँ उगाने के लिए उपयुक्त (उदाहरण)

- टमाटर
- स्ट्रॉबेरी
- खीरे
- पत्तेदार सब्जियाँ या जड़ी–बूटियाँ
- कार्नेशन्स आदि

यह प्रणाली विभिन्न प्रकार की सब्जियों और फलों को उगाने के लिए उपयुक्त हैं, खासकर उन फलों के लिए जिन्हें अधिक पानी और पोषक तत्वों की आपूर्ति की आवश्यकता होती है। यह फूलों को लगाने के लिए भी उपयुक्त है, जो एक स्थिर और अनुकूल विकास वातावरण प्रदान करता है, जिससे फूलों की गुणवत्ता और मात्रा में वृद्धि होती है और साथ ही रोपण दक्षता में सुधार होता है।

❋❋❋

कूँड सिंचित उभरी क्यारी (फर्ब) प्रणाली : जलवायु समुत्थोशीलन गेहूँ उत्पादन की उन्नत विधि

उदिती धाकड़, शालिनी मीणा, के.एम.शर्मा एवं चमन कुमारी जादौन
शस्य विज्ञान विभाग, कृषि महाविद्यालय,उम्मेदगंज, (कृषि विश्व महाविद्यालय) कोटा

जलवायु परिवर्तनों में बदलाव के कारण लगातार वर्षा की मात्रा मे कमी आंकी जा रही है जिससे भूमीगत जल के स्तर मे गिरावट व कमी हो रही है। रबी फसलों में गेहूं का प्रमुख स्थान है जिसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है जिसमे पलेवा के अलावा सतही सिंचाई से 4–6 सिचाईयों की जरुरत होती है जिसकी कुल जल माँग लगभग 50–60 सेमी. तक रहती है अतः उपलब्ध या कम पानी में गेहूँ सफल उत्पादन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। ऐसे मे जल कुशल दक्षीय प्रणालीयों की अति आवश्यकता है जिनमे कूँड सिंचित उभरी क्यारी (फरो इरीगेटेड रेज्ड बेड (फर्ब) प्रणाली काफी कारगर साबित हुई है। इस प्रणाली मे फर्ब मशीन (प्लांटर) द्वारा गेहूं की बुवाई ऊँची उभरी (उठी) हुई क्यारियो (बेड) पर की जाती है तथा बीच मे निर्मित कूँडों (फरो) में सिचाई की जाती है जिससे जल बचत और उपज मे लाभ होता है।

फर्ब प्रणाली के लाभ :

1 **जल संरक्षण :** पारम्परिक समतल बाढ विधि की तुलना में 25–30 प्रतिशत, सिचाई जल की बजत होती है तथा जल उपयोग दक्षता में भी वृद्धि होती है। औसतन समतल क्यारी की तुलना में गेहूं बीज मे 25–30 प्रतिशत तक बचत होती है।
2 **मृदा स्वास्थ :** उठी हुई क्यारियां बेहतर जल निकासी तथा वायु संचरण,वातन को बढ़ावा देती है जिससे जल भराव और लवणीकरण कम मात्रा में होता है।
3 **पोषक तत्व उपयोग दक्षता :** उवर्रको के अधिक सटीक अनुप्रयोग से पोषक तत्वों का अधिक व सार्थक अवशोषण होता है जिससे पोषक तत्वों के प्रयोग तथा उर्वरकों की मात्रा मे 25–30 प्रतिशत तक बचत व उनकी उपयोग दक्षता मे वृद्धि होती है।
4 **फसल का कम गिरना :** उठी हुई क्यारियों गेहूं के पौधों को उचित व बेहतर जड जमाव व सहारा देती है तथा तेज़ वायु के संवहन मे बाधा नही होने से, गेहूँ फसल मार्च–अप्रेल मे चलने वाली तेज हवाओ से आडी नहीं या कम गिरती है।
5 **खरपतवारों की वृद्धि मे कमी** क्योंकि कूँड/नालियों में इनका नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है।
6 **सार्थक उपज :** पारम्परिक विधि की तुलना में उपर्युक्त कारणों से अधिक उपज या तुल्यांक उपज प्राप्त हो सकती है

फर्ब विधि द्वारा गेहूं की बुवाई :

भूमि की तैयारी : सामान्यतः पारम्परिक बुवाई विधि की तरह ही भूमि की तैयारी की जाती है जिसमे 1–2 बार हैरो व एक बार कल्टीवेटर या रोटोवेटर चलाकर अन्त मे पाटा लगाना अच्छा रहता है। यदि दीमक का प्रकोप रहता है तो अंतिम जुताई के समय क्यूनालफॉस चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टर भूमी मे मिलावे। फर्ब से वुवाई करने हेतु भूमी का भुरभुरा होना आवश्यक है, ज्यादा बडे ढेले ना हो ।

बुवाई : फर्ब प्रणाली मे गेहूं की बुवाई ट्रैक्टर चालित विशेष प्रकार की फर्ब मशीन द्वारा की जाती है। फर्ब मशीन कूँड (फरो) व उठी क्यारी (रेज्ड बेड) एक साथ बनाई जाती है तथा एक बेड पर फर्ब मशीन जिसमे उर्वरक व बीज एक साथ प्रयुक्त होता है, बुबाई रेज्ड बेड पर स्वमेव 2–3 कतारो मे होती है। फर्क की चौड़ाई लगभग 70 सेमी. जिस पर 2–3 पक्तियों में बुवाई की जाती है तथा कूँड या नाली की चौडाई 45 सेमी. तथा गहराई लगभग 15–20 सेमी.होती है। रेज्ड बेड की चौडाई, ऊंचाई तथा कूँड /नाली की चौडाई व गहराई आवश्यकतानुसार कम–ज्यादा कर समायोजित की जा सकती है। फर्ब मशीन लगभग 70–80000 रुपये की मिल सकती है अथवा कस्टम हायरिंग सेन्टर पर उपलब्ध हो तो प्रयुक्त की जा सकती है।

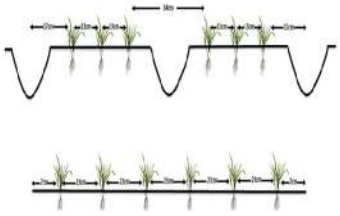

फर्ब मशीन : विभिन्न संस्थाओं द्वारा फर्ब मशीन का निर्माण किया गया है। फर्ब मशीन मे विभिन्न चौडाई और ऊंचाई की ऊँची क्यारियाँ (रेज्ड बेड) बनाने के लिए समायोज्य ब्लेड लगे होते है जिन्हें फ्रेम पर ब्लेड और पीछे लगे रोलर को मिलाकर समायोजित किया जाता जा सकता है। इसमे प्रत्येक रेज्ड बेड पर 2–3 तीन पंक्तियाँ बोने के लिए बीज–सह–उर्वरक ड्रिल तंत्र सम्मिलित होता है। यह मशीन प्रायः एक बार मे दो रेज्ड बेड तथा तीन कूँड एक साथ बनाती है। क्यारियों की चौड़ाई 70–90 सेमी. तक भी समायोजित की जा सकती है। उभरी क्यारियों के चौडाई व ऊँचाई निर्धारित करने में ट्रैक्टर के टायरों के बीच की दूरी, मिट्टी के प्रकार, व फसलानुसार जैसे कारक अत्यंत महत्वपूर्ण होते है। मशीन की कीमत उपकरणों के आधार पर लगभग 70–80000 रुपये तक हो सकती है परन्तु इसे अन्य उच्च मूल्य वाली फसलों की इस प्रणाली द्वारा बुवाई हेतु भी काम मे लिया जा सकता है। कूँड/फरो की ऊपरी चौडाई 40–45 सेमी. व सतह खांचा की चौड़ाई 30 सेमी. की फरो प्रणाली अक्सर उपयुक्त मानी जाती है ।फर्ब मशीन की प्रभावी कार्य क्षमता, भूमी व उसकी तैयारी पर निर्भर करती है फिर भी इसकी प्रभावी क्षेत्र क्षमता 0.2 हेक्टर प्रति घंटा है जिसे 35–50 अश्वशक्ति वाले ट्रैक्टर से चलाया जा सकता है।

बीज की मात्रा : पारम्परिक विधि की तुलना मे फर्ब विधि से गेहूं की बुवाई करने पर 25–30 किलोग्राम प्रति एकड़ बीज पर्याप्त रहता है। अच्छे अंकुरण हेतु उचित गहराई 4–5 सेन्टीमीटर पर बुवाई करें।

उवर्रक की मात्रा : गेहूँ फसल हेतु अनुसंषित पोषक तत्व नत्रजन 120 किग्रा., फास्फोरस 40 किग्रा. तथा पोटाश 30 किग्रा. प्रति हैक्टर प्रयुक्त करें। फास्फोरस व पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष आधी मात्रा प्रथम सिचाई के समय प्रयुक्त करें। चूकि उवर्रक केवल उठी हुई क्यारियों मे ही दिया जाता है अतः कुल मात्रा का केवल 75 प्रतिशत ही प्रयोग होता है, इससे लगभग 25 प्रतिशत उर्वरको की बचत होती है।

फर्ब विधि मे खरपतवार नियंत्रण : गेहूँ फसल मे खरपतवारों का प्रकोप भी होता है जिनमें गुल्ली डण्डा, जगंली जई, मोधा, दूब घास, बथुआ, खरतुआ, पीली सेंजी, कृष्ण नील, हिरनखुरी इत्यादि प्रमुख है। वैसे तो फर्ब विधि मे खरपतवारो का प्रकोप कम पाया जाता है। फिर भी खरपतवारों के नियंत्रण हेतु संस्तुति किये गया खरपतवार नाशकों का प्रयोग प्रथम सिचाई के पश्चात 30–35 दिन फसल अवस्था पर करना चाहिए। फर्ब विधि मे सीधे ट्रैक्टर चालित स्प्रे मशीन का प्रयोग आसानी से कर सकते है। ट्रेक्टर कूँड अथवा नालियों मे चलाया जाता है जिससे गेहूँ फसल को नुकसान नही होता है। गेहूँ फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु विभिन्न खरपतवारनाशकों जैसे 2–4 डी (एस्टर साल्ट) 500 ग्राम/है. या 2–4 डी (अमाइन साल्ट) 750 ग्राम/है. चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु प्रयुक्त करें। 2–4, डी का प्रयोग अर्जुन (एच.डी. 2009) किस्म में न करें। आइसोप्रोटोरोन 750 ग्राम/है. (हल्की मिट्टी में) तथा 1.25 कि.ग्रा./है. (भारी मिट्टी हेतु) संकरी पत्ती वाले खरपतवार–जंगली जई, गुल्ली डंडा को नियंत्रण हेतु बुवाई के 30–35 दिन बाद प्रथम सिंचाई पश्चात् 500–600 लीटर पानी में घोलकर एकसार छिड़काव करें। चौडी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रण करने हेतु मेटसफ्यूरोन मिथाइल 4 ग्राम/है. प्रथम सिंचाई के बाद (30–35 दिन फसल अवस्था पर) 500 मिलीलीटर सरफेक्टेंट के साथ पानी में घोलकर छिड़काव करें। संकरी पत्ती (जंगली जई, गुल्ली डंडा/गेहूँसा) व कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को भी नष्ट करने हेतु सल्फोसल्फ्यूरान 25 ग्राम प्रति है. प्रथम सिंचाई के बाद (30–35 दिन की फसल अवस्था पर) 0.5% सरफेक्टेंट के साथ पानी में घोलकर छिड़काव करें। सकड़ी व चौड़ी पत्ती खरपतवारों को करने हेतु है, सल्फोसफयूरॉन + मेटसल्फयुरॉन मिथाईल 75%+5% डब्ल्यू. जी. 32 ग्राम सक्रिय तत्व या काफेन्ट्राजान + मेटसल्फ्युरान मिथाईल 0.2 प्रतिशत एनआईएस, 25 ग्राम सक्रिय तत्व या क्लोडिनोफोप प्रोपार्जिल + मेटसल्फयुरान मिथाईल 15%+1% (मिश्रित उत्पाद) 52 ग्राम सक्रिय तत्व बुवाई के 30–35 दिन के अंदर 400–500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें। यदि कूँड अथवा नाली में कोई दूसरी फसल बोई गई हो तो फिर हाथ चालित स्प्रे मे प्लास्टिक का हुड लगाकर सावधानी पूर्वक केवल उभरी क्यारी की गेहूँ फसल पर ही स्प्रे करें।

फर्ब विधि में सिंचाई : कूँड सिंचित ऊँची क्यारी प्रणाली में पानी फरो (कूँड) से क्षैतिज रूप से उभरी क्यारियों (रेज्ड बेड) मे (सबबिंग) जाता है और केशिकात्व, वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन क्रियाओ द्वारा क्यारी मे ऊपर की मिट्टी की सतह की ओर और मुख्यतः गुरुत्वाकर्षण द्वारा नीचे की ओर खींचा जाता है। गेहूँ मे अनुसंशित 4–5 सिचाईयों की आवश्यकता होती है। गेहूं की कान्तिक अवस्थाओं पर सिचाई की जानी चाहिए। प्रथम सिचाई शीर्ष जड जमने की अवस्था पर अवश्य करें, दूसरी सिचाई 50–60 बुवाई दिन बाद फुटान की उत्तरावस्था, तीसरी सिचाई 75–80 बुवाई दिन बाद बाली आनेवस्था, चौथी सिचाई, 95–100 बुवाई दिन बाद दाने की दूधिया अवस्था करें। फर्ब विधि में सिचाई केवल कूँड (फरों) में की जाती है। कूँड मे पानी तीन–चौथाई अर्थात 75–80 प्रतिशत ऊँचाई से अधिक नही भरना चाहिए। यदि रेज्ड बेड के ऊपर तक पानी फैल गया तो रेज्ड बेड खराब हो जायेगी तथा फसल आडी गिर सकती है। केपीलरी क्रिया द्वारा कूँड से पानी संवहन द्वारा जाकर फसल की जड़ों को प्राप्त होता है। अतः पर्याप्त नमी पहुँचनी चाहिए। जब कूंड में 80 प्रतिशत टेल क्षैत्र तक पानी पहुँच जाए तो उसमें पानी देना बन्द कर देवें, क्योंकि शेष भाग रिसाव द्वारा स्वतः ही सिचिंत हो जायेगा, इस प्रकार लगभग 15–20 प्रतिशत पानी की बचत कर उससे अतिरिक्त क्षैत्र सिंचित किया जा सकता है।

फर्ब विधि में कीट एवं बीमारी नियंत्रण : प्रायः गेहूँ फसल मे कीट एवं बीमारियो का प्रकोप कम पाया जाता है।तथा फर्ब विधि से बुवाई में नगण्य प्रकोप होता है क्योंकि फसल को पर्याप्त मात्रा मे चारों ओर से पर्याप्त धूप,तापमान तथा वायु का संवहन कुँडों के माध्यम से आर–पार व अच्छा होता है फलस्वरूप फसल स्वस्थ तथा मजबूत रहती है। फिर भी यदि किसी कीट या बीमारी का प्रकोप हो जाए तो सिफारिशानुसार कीटनाशक व रोग नियंत्रण उपाय यथाशीध्र किये जावे ।

पाले व अधिक तापमान से बचाव : गेहूँ फसल पर पाले का प्रभाव कम पड़ता है परन्तु यदि पाला पड़ने की सम्भावना हो तो 0.1 प्रतिशत गन्धक के तेजाब का छिड़काव करें तथा कूँड मे सिचाई करें। गेहूँ फसल मे प्रायः बाली बनने की उत्तरावस्था या दाने बनने पर तापमान में यकायक वृद्धि हो जाती है, इससे दाने छोटे रह जाते है तथा उपज में कमी आ जाती है। इन अवस्थाओं पर यदि 1 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान बढ जाता है तो लगभग 2.5 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज मे कमी आँकी गई है। अतः ऐसी परिस्थिति होने पर पोटेशियम क्लोराइड 0.2 प्रतिशत या कैल्शियम क्लोराइड 0.1 प्रतिशत का एक पर्णीय छिडकाव करने से अधिक तापमान की परिस्थितियों में अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

उपज : वैसे तो गेहूं की उपज किस्म, जलवायुवीय कारको तथा प्रबंधन पर निर्भर करती है। विभिन्न अनुसंधानों से यह पाया गया है कि केवल रेज्ड बेड पर बुवाई द्वारा पारम्परिक विधि के बराबर तथा प्रति बाली अधिक सुडौल दाने व 1000 दानों के भार में वृद्धि से 5–20 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हो सकती है।

कई बार कृषक यह बताते है कि कूँड फरो खाली रहने से उपज में सार्थक वृद्धि नही होती है। इस पर कृषि अनुसंधान केन्द्र,उम्मेदगंज कोटा व राजस्थान कृषि महाविद्यालय,उदयपुर द्वारा इस प्रकार के सार्थक प्रयोग किये जा चुके है। ऐसी परिस्थितियों में खाली कूँड फरों में गेहूँ बुवाई के पश्चात कूँडो मे हल्का पानी लगाकर या प्रथम सिचाई उपरान्त रिजिका या बरसीम के बीज को छिटकाव कर उगाया जा सकता है, जिन्हें समय–समय पर कटाई कर पशुओं को चारे के रूप मे अथवा बाजार मे चारा बेचकर अतिरिक्त आय की जा सकती है। रिजिका या बरसीम की प्रत्येक कटाई पळचात आवश्यकतानुसार सिचाई अवश्य करनी चाहिए। इस प्रकार फर्ब प्रणाली (बेड पर गेहूँ तथा कूँड मे रिजिका/बरसीम) उगाकर अधिक तुल्यांक उपज एवं आय प्राप्त की जा सकती है।

प्याज की वैज्ञानिक खेती एवं फसल सुरक्षा

वैशाली नागर, प्रवीण कुमार चचैया, राकेश कुमार यादव एवं अरविन्द नागर
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

प्याज विश्व की सबसे अधिक उगाई जाने वाली सब्जियों में से एक है। यह एलिएसी परिवार का सदस्य है, जिसमें लहसुन, हरा प्याज़ (लीक) और शलजम भी शामिल हैं। भारत उत्पादन के मामले में दुनिया में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है और विश्व उत्पादन में इसका योगदान लगभग 20.84 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गुजरात, बिहार, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रमुख प्याज उत्पादक राज्य हैं। प्याज एक द्विवर्षीय फसल है। इसकी ऊँचाई 75–180 सेमी तक हो सकती है और फूलों की डंठल बिना पत्तियों के 6 फीट तक बढ़ जाती है, जिसके शीर्ष पर हरे–सफ़ेद फूलों के गुच्छे बनते हैं। ये फूल बेलनाकार रूप के छोटे–छोटे बल्बों का निर्माण करते हैं, जिनसे अलैंगिक (बीज का उपयोग किए बिना) रोपण किया जा सकता है। प्याज की पत्तियाँ अर्ध–गोलाकार होती हैं और भूमिगत बल्ब से निकलती हैं, जो परतों में विकसित होकर भोजन योग्य भाग बनता है। इसके तीखे स्वाद के पीछे सल्फर यौगिक होते हैं, जो इसे विविध व्यंजनों में अनिवार्य बनाते हैं। पौष्टिकता के साथ–साथ यह औषधीय गुणों से भी भरपूर है और इससे किसानों की आमदनी में भी वृद्धि होती है।

ऐसी मिट्टी एवं जलवायु होगी तो भरपूर होगी फसल: प्याज की खेती के लिए 6.0 से 7.0 पी.एच. मान वाली, अच्छे वायु संचार एवं जल–निकास युक्त दोमट मिट्टी उपयुक्त होती हैं। जैविक पदार्थों से भरपूर मिट्टी प्याज की जड़ों और गांठों की अच्छी बढ़वार में मदद करती है। प्याज शीतोष्ण जलवायु का पौधा है। किन्तु ये पुरे वर्श मध्यम जलवायु में उगाया जाता हैं। सबसे उपयुक्त तापमान 13°c से 24°c (यानि हल्की ठंड से लेकर हल्की गर्मी तक) प्याज की बढ़वार और गांठ बनने के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। प्याज में गाठो के सही तरीके से बनने हेतु प्रत्येक दिन लगभग 14 से 16 घंटे की धूप आवळ्यकता रहती है। बहुत अधिक ठंड (पाला), ज्यादा बारिश या नमी वाली जलवायु प्याज के लिए हानिकारक होती है। इससे प्याज की गांठ सड़ सकती है और गुणवत्ता खराब हो जाती है।

ये है उन्नत किस्में : प्याज एक द्विवर्षीय फसल है। इसकी ऊँचाई 75–180 सेमी तक हो सकती है और फूलों की डंठल बिना पत्तियों के 6 फीट तक बढ़ जाती है, जिसके शीर्ष पर हरे– सफ़ेद फूलों के गुच्छे बनते हैं।

अर्का कल्याण: अर्का कल्याण किस्म के कंद आकर्षक लाल रंग के होते हैं, आकार चपटा गोल होता है, जिनका वजन लगभग 100–140 ग्राम होता है। यह किस्म पर्पल ब्लॉच रोग के प्रति सहनशील है और देश के कई कृषि जलवायु क्षेत्रों में लोकप्रिय और अपनाई गई है। इसकी प्रति हेक्टेयर उपज लगभग 40 टन होती है।

अर्का भीम : अर्का भीम एक त्रि–पैतृक सिंथेटिक किस्म है, जिसके कंद लाल से गुलाबी–लाल रंग के लंबे गोल आकार के होते हैं। औसतन एक कंद का वजन 120 ग्राम होता है और 130 दिनों में लगभग 47 टन प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

अर्का सोना : अर्का सोना एक पीले रंग की प्याज की किस्म है जिसे विशेष रूप से एशियाई देशों के निर्यात बाजार के लिए विकसित किया गया है, इसकी उपज 120 दिनों में 45 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

अर्का विश्वास : अर्का विश्वास गुलाबी प्याज की एक निर्यातोन्मुख किस्म है जिसे चयन विधि से विकसित किया गया है।

अर्का उज्ज्वल: अर्का उज्ज्वल टू सीड मल्टीप्लायर प्याज है जिसे वंशावली विधि से विकसित किया गया है और इसमें टी एस एस 18° ब्रिक्स होता है, यह किस्म निर्यात बाजार के लिए उपयुक्त है।

अर्का स्वादिष्ट : अर्का स्वादिष्ट एक सफेद प्याज की किस्म है जिसे खमीरयुक्त संरक्षण के लिए विकसित किया गया है, इसमें टी एस एस 18° ब्रिक्स होता है और इसकी उपज लगभग 30 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

अर्का लालिमा : अर्का लालिमा एक सीएमएस आधारित एफ1 हाइब्रिड किस्म है जिसके कंद मध्यम से बड़े आकार के, गोल और ठोस बनावट वाले होते हैं। यह किस्म बीमारियों और कीटों के प्रति सहनशील है तथा खरीफ और रबी दोनों मौसमों के लिए उपयुक्त है, उपज 47 टन प्रति हेक्टेयर है।

अर्का पिताम्बर : अर्का पिताम्बर एक समान आकार की पीली प्याज किस्म है जिसके कंद मध्यम आकार के, गोल और पतली गर्दन वाले होते हैं। इसमें तीखापन कम होता है, टी एस एस 11° ब्रिक्स और कुल शर्करा 9.81 प्रतिशत होती है। यह किस्म पर्पल ब्लबच, बेसल रॉट रोग और थ्रिप्स कीटों के प्रति सहनशील है तथा इसकी भंडारण अवधि 3–4 महीने तक होती है, जिससे यह निर्यात के लिए उपयुक्त बनती है।

अर्का बिंदु : अर्का बिंदु एक तीव्र तीखेपन वाली निर्यात उन्मुख गुलाबी प्याज किस्म है, जिसे मलेशिया, सिंगापुर, इंडोनेशिया और बांग्लादेश को निर्यात किया जाता है। इसके कंद चमकदार गहरे लाल रंग के, चपटा गोल आकार के होते हैं और यह खरीफ व रबी दोनों मौसमों के लिए उपयुक्त है।

अर्का प्रगति : अर्का प्रगति के कंद गोल होते हैं। यह मध्यम आकार की प्याज की किस्म है जिसमें गहरे गुलाबी बाहरी छिलके और तीखापन अधिक होता है। एक कंद का औसत वजन 100–160 ग्राम होता है और इसकी उपज लगभग 35 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

खेत तैयार करना : प्याज की खेती के लिए सबसे पहले भूमि का चयन करें, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो, उपजाऊ मिट्टी हो और पर्याप्त धूप मिलती हो। इसके बाद 15 से 20 सेमी गहरा तक जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बनाएं ताकि पौधों की जड़ें आसानी से फैल सकें। मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए गोबर की खाद या कम्पोस्ट जैसे जैविक पदार्थों को खेत में मिलाएं। बुवाई से पहले खरपतवार नियंत्रण के लिए प्री–इमर्जेन्स हर्बीसाइड का उपयोग करें।

बुवाई का उपयुक्त समय: प्याज की बुवाई का समय क्षेत्र के अनुसार अलग–अलग होता है। ठंडे क्षेत्रों में प्याज की बुवाई फरवरी से मार्च के बीच करनी चाहिए ताकि गर्मियों में फसल मिल सके, जबकि गर्म क्षेत्रों में इसे सितंबर–अक्टूबर के ठंडे महीनों में बोया जाता है ताकि सर्दियों में फसल तैयार हो। प्याज के बीजों को 1ळ2 सेमी गहराळ पर 25ळ30 सेमी की दूरी पर कतारों में बोया जाता है।

बीज एवं गांठों का उपचार: प्याज की अच्छी पैदावार और रोगों से सुरक्षा के लिए बीजों को थिरम या कैप्टान जैसे फफूंदनाशक में भिगोकर बोने से फंगल रोगों से बचाव होता है एवं गांठों को 40°C गर्म पानी में 2–3 घंटे तक भिगोकर रखने से जड़ों की बढ़त अच्छी होती है।

खाद एवं उर्वरक की हो उचित मात्रा: प्याज एक भारी खाद वाली फसल है और इसकी पूरी वृद्धि काल में पर्याप्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। खेत की तैयारी के समय प्रति हेक्टेयर 10 से 15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालना चाहिए। सामान्यतः रासायनिक उर्वरक के रूप एन.पी.के. को 1:1:1 या 2:1:1 के अनुपात में देना चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, बोरॉन और आयरन की भी

जरूरत होती है, जिससे पौधों की अच्छी वृद्धि और कंद का विकास सुनिश्चित हो सके। बढ़वार की शुरुआती अवस्था और कंद बनने के समय नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की टॉप ड्रेसिंग करनी चाहिए।

समय पर हो सिंचाई : प्याज की फसल के लिए नियमित और संतुलित सिंचाई बहुत जरूरी है। प्याज अधिक पानी सहन नहीं कर पाता, इसलिए खेत में नमी संतुलित रहनी चाहिए। ड्रिप सिंचाई सबसे उपयुक्त मानी जाती है क्योंकि यह पानी को सीधे जड़ों तक पहुंचाती है और जल की बर्बादी को भी कम करती है। यदि ड्रिप प्रणाली उपलब्ध न हो तो नालियों या भराई विधि से सिंचाई की जा सकती है। प्याज की पूरी वृद्धि काल में लगभग 400 से 600 मिमी पानी की आवश्यकता होती है। फसल के शुरुआती चरणों में सिंचाई नियमित करें और जैसे ही कंद बनना शुरू हो जाए, सिंचाई की मात्रा धीरे–धीरे कम कर दें।

सही समय पर हो खरपतवार नियंत्रण : प्याज की खेती में बुवाई से पहले खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडिमेथालिन या एलेक्लोर जैसे हर्बीसाइड का उपयोग करें और साथ ही ऑर्गेनिक या प्लास्टिक मल्चिंग का सहारा लें ताकि खरपतवारों की वृद्धि रोकी जा सके। बुवाई के बाद छोटे खेतों में हाथ से निराई करना प्रभावी होता है, जबकि बड़े खेतों में पोस्ट–इमर्जेन्स हर्बीसाइड जैसे मेटसल्फ्यूरॉन–मेथाइल का सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जा सकता है ताकि प्याज की फसल को नुकसान न पहुंचे।

ये है प्रमुख कीट :

क्र.स.	कीट का नाम	लक्षण	प्रबंधन
1.	थ्रिप्स (थ्रिप्स टेबेसाई)	पतियों पर चॉदी जैसी धारियाँ, पत्तियाँ सूखी, मुडी व मुरझाई हुई।	नीम का तेल (5ml/ lit.) पानी व इमिडाक्लोप्रिड़ (0.3ml/ lit.) छिडकाव करें।
2.	प्याज़ मैगट (डेलिया एंटीक्वा)	इसकी लार्वा अवस्था प्याज की जड़ में प्रवे ा कर उसे सड़ा देती है।	बुवाई से पहले बीज को थाइमिन या कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किलो दाने में कोटिंग व फसल चक्र अपनाए (अन्य फेबेसिया फसलें लगाएं)
3.	कटवर्म (एग्रोटिस इप्सलन)	यह तने को काटकर पौधे को गिरा देता है।	क्लोरपाइरीफॉस का (1ml/ lit.) छिड़काव करे।
4.	एफिड्स (एफिड्स स्पी.)	पत्तियों पर छोटे हरे–नारंगी कीड़े, चिपचिपा पदार्थ स्त्रावित करते हैं।	नीम का अर्क (5ml/ lit.) या कार्बोफ्यूरॉन (3ml/ lit.)

प्रमुख रोग :–

क्र.स.	रोग का नाम	लक्षण	प्रबंधन
1.	पर्पल ब्लोटच (अल्टरनेरिया पोराई)	पत्तियों पर बैंगनी रंग के गोल धब्बे, किनारे सूक जाते है।	कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.25 प्रतिशत या मैनकोजेब 0.2 प्रतिशत का छिड़काव ,फ़सल में पानी का उचित प्रबंधन।
2.	डाउनी मिल्ड्यू (पेरोनोस्योरा डेस्ट्रक्टर)	पत्ती की ऊपरी सतह पर हल्के पील धब्बे, निचली सतह पर सफेद फफूंदी।	मेटालाक्सिल 0.1 प्रतिशत छिड़काव।
3.	पिंक रूट (फोमा टेरेस्ट्री)	जड़ों का गुलाबी व बाद में पीला हो जाना।	सूखी व संक्रमणग्रस्त मिट्टी का निपटान, ट्राइकोडर्मा व वर्मी कंपोस्ट का उपयोग।
4.	बेसल रॉट (फ्युजेरियम स्पी.)	जड़ो व बल्व के आधार भाग में सड़न दिखाई देना।	कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किलो बीज कोटिंग व फसल चक्र में ब्रैसिका वर्ग फसलों का समावेश।
5.	व्हाइट रॉट (स्क्लेरोशियम सेपीवोरम)	जडों में सफेद फफूंदी व मुरझान।	मिट्टी सोलराइजेशन (प्लास्टिक कवर से गर्म करना), नीम केक या जैविक फफूंदनाशी का प्रयोग करें।

इस तरह करें फसल की कटाई : प्याज की कटाई तभी करनी चाहिए जब पौधों की पत्तियाँ ऊपर से पीली होकर सूखने लगें और लगभग 50–70 प्रतिशत पौधों की पत्तियाँ जमीन पर झुक जाएँ। कटाई हमेशा साफ और सूखे मौसम में करनी चाहिए। बरसात या अधिक नमी वाले दिनों में कटाळ करने से प्याज जल्दी सड़ सकता है और उसका भंडारण समय घट जाता है। कटाळ के समय सबसे पहले खेत को हाथ से या खुरपी/फावड़े की मदद हल्के से खोदकर प्याज के पौधों को जड़ों सहित बाहर निकालें। कटाई के तुरंत बाद प्याज के पौधों को खेत में 2–3 दिन तक खुली धूप में सुखाएं। भंडारण से पहले प्याज को आकार और गुणवत्ता के आधार पर अलग करें। सड़े हुए, कटे–फटे या रोगग्रस्त प्याज को तुरंत हटा दें ताकि बाकी प्याज सुरक्षित रहें।

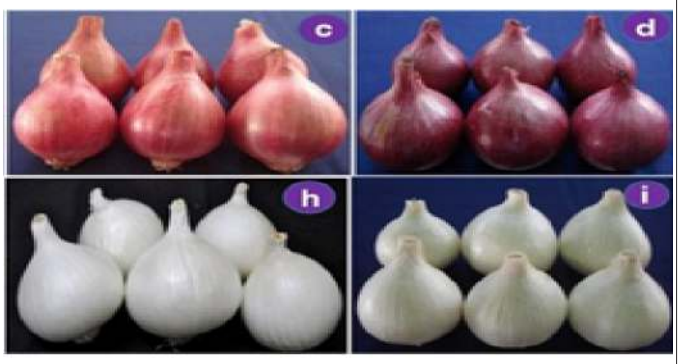

❋❋❋

बीहड़ प्रभावित क्षेत्रों के लिए बागवानी प्रणालियाँ

एच.आर. मीना, टी.एस. चैत्रा, मीनाक्षी मीना और शाकिर अली
आईसीएआर–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, कोटा, राजस्थान, भारत
बागवानी विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, एमपीयूएटी, उदयपुर, राजस्थान, भारत

भारत दुनिया में फलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जिसका वार्षिक उत्पादन 81.29 मिलियन टन है। भारत में विश्व का लगभग 10 प्रतिशत फल पैदा होता है। देश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए फलों के उत्पादन में तीन गुना वृद्धि की आवश्यकता है। अभी भी भारत में प्रति व्यक्ति फलों की उपलब्धता 40 ग्राम प्रतिदिन है, जबकि भारतीय आर्युविज्ञान अनुसंधान संस्थान ने न्यूनतम 120 ग्राम/व्यक्ति/दिन की सिफारिश की है। वर्तमान में, उत्पादक भूमि पर दबाव पहले से कहीं अधिक है और आने वाले वर्षों में और भी अधिक होगा। प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि 2000 में लगभग 0.23 हेक्टेयर से घटकर 2050 तक लगभग 0.15 हेक्टेयर होने का अनुमान है। राष्ट्रीय फल आवश्यकता को पूरा करने के लिए कृषि योग्य भूमि में बागवानी के अंतर्गत क्षेत्र को बढ़ाने के लिए बहुत कम अवसर हैं इसलिए, बीहड़ भूमि को बागवानी के अंतर्गत लाकर उसके इष्टतम उपयोग के लिए अवसरों का पता लगाने की आवश्यकता है। चूँकि मौजूदा खराब हो चुकी भूमि, खास तौर पर बीहड़ों में रहने वाले किसान प्रमुख बागवानी फलों के लिए आवश्यक उच्च निवेश प्रबंधन प्रणाली का समर्थन करने में असक्षम हैं। गौण फल प्रजातियों को पेश करने की संभावनाओं की खोज करना आवश्यक है जो कठोर जलवायु परिस्थितियों में भी इष्टतम परिणाम दे सकती हैं। हाल ही में राष्ट्रीय बागवानी मिशन (एनएचएम) ने भी बढ़ती आबादी की पोषण सुरक्षा के लिए कम उपयोग वाले (गौण) फलों को लोकप्रिय बनाने एंव व्यावसायीकरण करने की आवश्यकता पर जोर दिया है।

यदि बीहड़ जैसे बंजर क्षेत्रों में वैज्ञानिक खेती की जाए तो देश के लोगों के दैनिक आहार में फलों की आपूर्ति बढ़ सकती है। बहु–दिशात्मक ढलानों वाली उथली बीहड़ों में समतलीकरण और सीढ़ीनुमा खेती की लागत अधिक हो सकती है, लेकिन यदि ड्रिप सिंचाई द्वारा कभी–कभार सिंचाई की व्यवस्था की जाए तो उनका उपयोग गौण फलों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। चूंकि बीहड़ों वाली भूमि नदी प्रणाली के आसपास स्थित होती है, इसलिए अधिकांश मामलों में सूक्ष्म सिंचाई सुविधा विकसित करना संभव होगा। ये प्रणालियाँ लागत प्रभावी हैं और उनका लाभ–लागत अनुपात अधिक है। ड्रिप या सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली विशेष रूप से बागों और बागानों की फसलों के लिए उपयुक्त है, जहाँ यह 30–70 प्रतिशत सिंचाई जल बचाती है और उपज में 25–80 प्रतिशत की वृद्धि करती है। ड्रिप सिंचाई परीक्षणों से प्राप्त साक्ष्यों ने स्पष्ट रूप से जल बचत, उच्च उत्पादकता, सीमित खरपतवार वृद्धि, परिसंपत्तियों का बेहतर प्रबंधन, बेमौसम परिपक्वता, बेहतर फल गुणवत्ता और कीटों और बीमारियों के कम प्रकोप जैसे लाभों का संकेत दिया है। फलों की खेती के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली विकसित करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने वाली कई सरकारी योजनाएँ हैं।

1. बीहड़ भूमि के लिए फल प्रजातियों का चयन

बागवानी भूमि उपयोग के माध्यम से बीहड़ भूमि के उत्पादक उपयोग के लिए फलों की फसलों का विवेकपूर्ण चयन पहला और महत्वपूर्ण कदम है। उपयुक्त फल प्रजातियों का चयन करते समय निम्नलिखित विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए।

1. बीहड़ भूमि के लिए कम लागत वाली फसल प्रणाली विकसित करने के लिए उन फल प्रजातियों की पहचान करने की आवश्यकता है जिनकी वृद्धि विकास एवं फलन वर्शा एवं सर्दी के मौसम के दौरान होनी चाहिए और गर्मियों की शुरुआत से पहले फलों का पकना पूरा हो जाना चाहिए।

2. चूंकि बीहड़ भूमि में पानी एक सीमित कारक है, इसलिए इन क्षेत्रों के लिए चुनी गई फसलों में सूखा सहन करने की क्षमता होनी चाहिए। बेर और लसोड़ा (कॉर्डिया मिक्सा) की तरह गहरी जड़ प्रणाली और गर्मियों में नमी को संरक्षित करने के लिए पत्तियों का झड़ना वांछनीय विशेषताएं हैं। अंजीर की तरह पानी को बांधने की प्रणाली और पत्तियों पर मोम की परत, रोएँदारपन, धँसे हुए और ढके हुए रंध्र जैसे अन्य शुष्कजीवी लक्षण सूखा सहन करने की क्षमता के संकेत हैं। कम अवधि और जल्दी पकने वाली किस्म और प्रजातियाँ सूखे की स्थिति से बचने की संभावना रखती हैं।

3. खारेपन और क्षारीयता अक्सर बीहड़ क्षेत्रों में देखी जाती है। आंवला और बेर जैसे फलों में पी.एच के प्रति बहुत सहनशीलता होती है और ये 9.2 से 10.5 पी.एच की सीमा में भी उग सकते हैं।

4. जलवायु संबंधी मुद्दे जैसे तापमान की चरम सीमा, फलने के मौसम के दौरान आर्द्रता की सीमा और पाला और गर्मी की लहरों का आना आदि की प्रजातियों के चयन के लिए गंभीरता से जांच की जानी चाहिए क्योंकि ये फलों की गुणवत्ता के लिए महत्वपूर्ण हैं।

5. विपणन के अवसर और स्थानीय प्राथमिकताएँ भी महत्वपूर्ण विचार हैं। उचित परिपक्वता के समय स्थानीय और साथ ही दूरस्थ विपणन स्थितियों और पैकेजिंग सामग्री और परिवहन साधनों की उपलब्धता की जांच की जानी चाहिए। ताजे फलों और अचार, जूस, जैम, चटनी, निर्जलित उत्पादों आदि जैसे प्रसंस्ळत उत्पादों की स्थानीय मांग और प्राथमिकताओं की जांच की जानी चाहिए। इसके अलावा ईंधन और चारा जैसे अन्य उपोत्पाद भी कभी–कभी महत्वपूर्ण चयन मानदंड होते हैं।

अन्य बातों के अलावा जल प्रबंधन तकनीक, उचित रूट–स्टॉक और प्रसार तकनीक में फल उत्पादकता बढ़ाने और बीहड़ क्षेत्रों के किसानों के लिए फलों की खेती को अधिक आकर्षक और लाभदायक बनाने की क्षमता है।

2. बीहड़ भूमि में फल आधारित प्रणाली का प्रबंधन

खराब पारिस्थितिकी तन्त्र में फलोत्पादकता के स्तर को बनाए रखने के लिए सख्त प्रबंधन की जरूरत होती है। कुछ प्रमुख प्रबंधन जैसे रोपण सामग्री की गुणवत्ता सुनिश्चित करना, अनुशंसित रोपण की योजना बनाना, रोपण के बाद देखभाल करना और कटाई तथा कटाई के बाद के कार्यों का स्मार्ट प्रबंधन करना है।

स्वस्थ और सही प्रकार की रोपण सामग्री सरकारी नर्सरी, विश्वविद्यालय, अनुसंधान संगठन और सरकार द्वारा अनुमोदित निजी नर्सरी जैसे अनुमोदित और प्रामाणिक स्रोतों से खरीदी जानी चाहिए। परिवहन और विपणन के दौरान नुकसान को कम करने के लिए खरीदी गई सामग्री को गद्देदार सामग्री के साथ ठीक से पैक किया जाना चाहिए। मानसून की शुरुआत के समय खेत में रोपण की सुविधा के लिए समय पर रोपण प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए। मार्च और अप्रैल के महीने लेआउट और गड्ढे खोलने के काम के लिए उपयुक्त हैं। हल्के ढलानों या बहुदिशात्मक ढलानों वाली उथली घाटियों पर, गड्ढे के चारों ओर थोड़ा समतलीकरण करके 1 एक घन मीटर आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। पौधों के बीच के स्थान को समतल नहीं किया जाता है। उबड़–खाबड़ इलाकों में पौधे लगाने के लिए नमी की उपलब्धता में सुधार करने के लिए लगाए गए पेड़ के आसपास अर्धचंद्राकार जलग्रहण क्षेत्र विकसित किया जाता है।

जुलाई–अगस्त के महीने में वांछित दूरी पर खोदे गए 1 x 1 x 1 मीटर आकार के गड्ढों में पेड़ों का रोपण किया जाता है। खोदी गई मिट्टी को मई–जून के दौरान सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। रोपण के समय गड्ढे को मिट्टी के ढेर से भर दिया जाता है, साथ ही प्रत्येक गड्ढे में 25–30 किलोग्राम गोबर की खाद (FYM) और 100 ग्राम कीटनाशक पाउडर डाली जाती है। यदि मिट्टी में फास्फोरस की कमी है, तो 1

किलोग्राम एसएसपी मिलाने से मिट्टी में फास्फोरस का स्तर बेहतर हो जाएगा। पहली मानसून की बारिश शुरू होने के बाद फलों के पेड़ों की उन्नत किस्मों के साथ कम से कम एक साल पुराने पौधे रोपे जाते हैं। पौधों को सावधानीपूर्वक ले जाने और गड्ढे के केंद्र बिंदु पर रोपने की आवश्यकता होती है जो पहले से ही उचित मिट्टी के माध्यम से भरा हुआ है। खरीदे गए या उगाए गए पौधों की पॉलीथीन की पैकिंग हटा दी जाती है और गड्ढे के केंद्र में एक छोटा सा छेद करके पौधे को तैयार गड्ढे में लगा दिया जाता है, इसके बाद थोड़ा दबाव डाला जाता है ताकि पौधे गड्ढे में मिश्रित मिट्टी के साथ निकट संपर्क में रहें और अपनी बेहतर स्थापना करें। शुक्ष्म जलग्रहण संरचना रोपे गए पौधे के ऊपर की तरफ जमीन को हल्का ढलान देकर की जाती है, जिससे बारिश का पानी रोपे गए पौधे की जड़ों तक पहुँचता है और पेड़ के तने से 0.75–1.0 मीटर की दूरी पर गड्ढे के नीचे की तरफ एक अर्धचंद्राकार मेड़ बनायी जाता है। अगर जरूरत हो तो पौधे को बांस या लकड़ी की छड़ी से सहारा दिया जाता है ताकि पौधे सीधे बढ़ सकें। अगर बारिश के दिन पौधे नहीं लगाए जाते हैं तो पौधे की जड़ के आस–पास मिट्टी के कणों को नीचे बैठाने के लिए रोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई की जाती है। दीमक और अन्य मिट्टी जनित कीटों को नियंत्रित करने के लिए सिंचाई के साथ पौधे के बेसिन में क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी / 5 मिली का इस्तेमाल करने की सलाह दी जाती है। उचित खेत की स्थिति में हर सिंचाई के बाद गुड़ाई और निराई करना वांछनीय है। रोपण के पहले वर्ष में गर्मियों के दौरान साप्ताहिक सिंचाई और सर्दियों के मौसम में महीने में एक बार सिंचाई की जानी चाहिए। पौधे की स्थापना के बाद दूसरे वर्ष के दौरान, सर्दियों के दौरान दो सिंचाई और गर्मियों के दौरान चार सिंचाई बेहतर विकास और फलों की गुणवत्ता वाली उपज का समर्थन करेगी। पौधों को कठोर सर्दियों के दौरान सिंचाई के माध्यम से पाले से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है।

परिपक्वता के उचित चरण पर कटाई करना विपणन रणनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। स्थानीय विपणन के लिए पूरी तरह से परिपक्व और पकने की अवस्था में कटाई करना वांछनीय है, जबकि दूर के विपणन के लिए फलों को आवश्यक परिवहन अवधि के अनुसार पहले से ही काटा जाना चाहिए ताकि अधिक पकने के कारण होने वाले नुकसान को रोका जा सके। सुरक्षित कटाई के लिए फलों को कट और होल्डर प्रकार के फ्रूट पिकर से काटा जाना चाहिए ताकि कटाई के दौरान होने वाले आंतरिक और बाहरी नुकसान को कम किया जा सके। दूर के विपणन के लिए उत्पाद की प्रकृति के अनुसार उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री की योजना बनाना भी महत्वपूर्ण है।

3. बीहड़ भूमि के लिए उपयुक्त बागवानी आधारित प्रणालियाँ

बागवानी भूमि उपयोग प्रणाली का चुनाव क्षेत्रीय कृषि–पारिस्थितिकी, सामाजिक–आर्थिक कारकों, बुनियादी ढांचे, व्यापार और विपणन अवसरों से संबंधित कारकों पर निर्भर करता है। ये सभी कारक सूक्ष्म स्तर पर परस्पर क्रिया करते हैं और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। प्रति इकाई क्षेत्र और समय पर आर्थिक लाभ या मौद्रिक लाभ, किसी दिए गए भूमि उपयोग से जुड़े संभावित जोखिम और इनपुट आवश्यकताएं भूमि उपयोग प्रणाली को अपनाने के लिए किसान और समुदाय के स्तर पर प्रमुख विचार हैं। आम, नींबू, अमरूद आदि जैसे फलों को भी सीढ़ीदार खेती और ड्रिप सिंचाई सुविधा के साथ बीहड़ों में लगाया जा सकता है।

1. एकल बागवानी प्रणालियाँ

एक या एक से अधिक बागवानी प्रजातियों को एक साथ उगाना एकल या शुद्ध बागवानी प्रणाली के रूप में जाना जाता है। आम तौर पर इस प्रणाली का उपयोग निजी स्वामित्व वाली कृषि योग्य भूमि में किया जाता है, जिसमें मिट्टी की अच्छी गुणवत्ता और सुनिश्चित सिंचाई जल उपलब्धता होती है। इस प्रणाली का उपयोग ड्रिप सिंचाई प्रणाली की स्थापना के साथ बीहड़ों और उतार–चढ़ाव वाले स्थलाकृतिक क्षेत्रों में किया जा सकता है। पर्णपाती प्रकृति और गहरी जड़ वाली प्रजातियाँ बीहड़ वाले क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त हैं। कठोर फलों की प्रजातियाँ जैसे आंवला (एम्ब्लिका ऑफिसिनालिस), बेर (जिजिफस मॉरिसियाना), अनार (पुनिका ग्रैनेटम), कैथ (फेरोनिया लिमोनिया), अंजीर (फिकस कैरिका), करौंदा (कैरिसा कैरेंडस), बेल (एगल मार्मेलोस), लसोडा (कॉर्डिया मिक्सा), कैर (कैपारिस डिसिडुआ), इमली (टैमारिंडस इंडिका), फालसा (ग्रेविया एशियाटिका), जामुन (साइजियम क्यूमुनी), अमरूद (सिडियम गुजावा) और महुआ (मधुका इंडिका) को सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के प्रावधान के साथ उथले बीहड़ों में आसानी से उगाया जा सकता है।

एकल बागवानी प्रणाली को मामूली भूमि आकार देने के साथ स्थापित किया जा सकता है और इसके लिए प्रमुख अंतर–संस्य क्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती है। हालाँकि, रोपण के दूसरे वर्ष तक प्रारंभिक अवस्थाओं में समय–समय पर निराई गुड़ाई करने से रोपे गए पौधों की शुरुआती वृद्धि में सुधार होता है। छह महीने के अंतराल पर 25–50 किलोग्राम प्रति पौधे की दर से गोबर की खाद डालने से फलों के उत्पादन में सुधार होगा।

किसी भी बागवानी प्रणाली को बड़े पैमाने पर अपनाने के लिए विपणन के तरीकों का ज्ञान और उपज के लाभदायक निपटान के लिए समर्पित प्रबंधन की आवश्यकता होती है। खाद्य फसलों के विपरीत फलों का बाजार अधिक विशिष्ट है और यह मुख्य रूप से कटाई के बाद की प्रक्रिया, उपज के शीघ्र निपटान और तीव्र परिवहन के लिए बुनियादी ढांचे आदि पर निर्भर करता है। फलोत्पादकों को एकमात्र बागवानी प्रणालियों की बड़े पैमाने पर स्थापना करते समय इन पहलुओं का ध्यान रखना आवश्यक है।

2. बागवानी – कृषि प्रणालियाँ

बागवानी पौधों के साथ कृषि योग्य फसलों को उगाना कृषि उत्पादन को बनाए रखने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थिर करने के लिए व्यवहार्य तरीकों में से एक है। लोगों को भोजन, पोषण और आय सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक आदर्श रणनीति के रूप में फल आधारित फसल प्रणाली की सिफारिश की जाती है। फलों के पेड़ों के साथ वार्षिक फसलों के एकीकरण से कई आउटपुट मिलते हैं जो उत्पादन और आय सृजन को एक स्थायी तरीके से सुनिश्चित करते हैं। ऐसी प्रणालियाँ भूमि, जल, मिट्टी, सौर विकिरण जैसे प्राकृतिक संसाधनों के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक इनपुट विशेष रूप से घरेलू श्रम और मौद्रिक निवेश का कुशलतापूर्वक उपयोग करने का अवसर प्रदान करती हैं। पूरक वृक्ष–फसल संघों के तहत पेड़ की छतरी के नीचे फसल उत्पादकता में सुधार के कारण मिट्टी की उर्वरता बढ़ जाती है। अंडरस्टोरी तापमान और वाष्पोत्सर्जन को कम करके छाया का सुधारात्मक प्रभाव देखा गया है। इसलिए फसल प्रणाली में फलों के पेड़ों को शामिल करना अधिक लाभदायक है और यह समय के साथ प्रणाली का लचीलापन बढ़ाता है। कृषि–बागवानी प्रणालियों के कई लाभ इस प्रकार सूचीबद्ध किए जा सकते हैं।

1) यह वार्षिक आधार पर प्रणाली उत्पादकता को अधिकतम करता है,
2) मिट्टी–पौधे–वायुमंडल सातत्य में होने वाली विभिन्न अंतःक्रियाओं और प्रत्यक्ष, अवशिष्ट और संचयी प्रभावों पर उचित विचार करके उच्च दक्षता के साथ संसाधनों का उपयोग करता है,
3) पर्यावरण की गुणवत्ता के संबंध में इनपुट उपयोग को तीव्र करता है,
4) दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में कृषि संसाधनों और पर्यावरण की स्थिरता प्रदान करता है।

अंतर–फसलों की उपयुक्तता मुख्य रूप से मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करती है। प्रतिस्पर्धी प्रकृति की फसलों को आमतौर पर अंतर–फसल के रूप में पसंद नहीं किया जाता है। इसके विपरीत, साथी और सहक्रियात्मक विशेषताओं वाली फसलों को शुरुआती आय बढ़ाने, भूमि उपयोग दक्षता को अनुकूलित करने, सौर ऊर्जा के बेहतर दोहन की सुविधा प्रदान करने, मिट्टी के कटाव को कम करने, बागवानीफल आधारित उत्पादन प्रणालियों में समय और स्थान दोनों आयामों में जैविक दक्षता बढ़ाने के लिए अनुकूल माना जाता है। यह प्रणाली निजी स्वामित्व वाली समतल भूमि के लिए बेहतर अनुकूल है।

खेत की फसलें ब्लॉक रोपण प्रणाली में लगाए गए फलों के पेड़ों के बीच की जगह में उगाई जाती हैं या फलों के पेड़ों को फसलों के साथ एकीकृत किया जाता है नीबू ,ऑवला, अमरूद, अनार, बेर, बेल, कसोड़ा, करोंदा आदि का उपयोग अक्सर बीहड़ों के किनारे की भूमि/सीमांत भूमि में बागवानी–कृषि प्रणाली के लिए किया जाता है, क्योंकि वे अधिकांश खेत की फसलों के साथ संगत हैं और कम संसाधन की स्थिति को अच्छी तरह से झेल सकते हैं। खरीफ में मूंग सोयाबीन और तिल और रबी मौसम में चना धनिया और मेथी जैसी खेत की फसलें नियमित खेती के तरीकों से लगाए गए पेड़ों के बीच की जगह में उगाई जाती हैं।

मुख्य रूप से आंवला, कागजी नीबू और अमरूद आधारित बागवानी–कृषि भूमि उपयोग चंबल, माही और यमुना के बीहड़ों और उथली बीहड़ों साथ सीमांत भूमि के लिए उपयुक्त हैं। आंवला (8 x 8 मीटर), कागजी नीबू (5 x 5 मीटर) एंव अमरूद (6 x 6 मीटर) की दूरी पर लगाया जाता है और पेड़ो की पक्तियों के बीच फसलों की खेती की जाती है। कृषि–बागवानी प्रणाली के बारहमासी और वार्षिक घटकों के बीच भूमिगत और ऊपरी संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा के डर से किसानों की फसल वाली भूमि पर बागवानी रोपण शुरू करने के प्रति अनिच्छा अक्सर देखी गई है। आम तौर पर चढ़ने वाली फसलों को छोड़कर किसी भी खेत की फसल को रोपण के पहले पांच से सात वर्षों के दौरान अंतर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है। एक बार जब पेड़ों की छतरी विकसित हो जाती है, तो फसलों के लिए प्रकाश की उपलब्धता कम हो जाती है, तो अदरक, अरबी, हल्दी आदि जैसी छाया सहने वाली फसलें अनाज की फसलों के स्थान पर लगाई जाती हैं।

3. बागवानी– चारागाह प्रणालियां

फलों के पेड़ों को घास के साथ एकीकृत करना एक उपयोगी प्रणाली है, जहाँ पशुधन आजीविका का एक प्रमुख घटक है। हालाँकि यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि चारा फसलें मुख्य फसल की वृद्धि और विकास को प्रभावित न करें। बेर या बोरडी जैसे पेड़ आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में उगाए जाते हैं और एक महत्वपूर्ण शीर्ष चारा प्रजाति हैं। सूखे के वर्षों के दौरान, जब फसलें आम तौर पर विफल हो जाती हैं, तो फलों की प्रजातियों का शीर्ष चारा किसानों की मदद के लिए आता है। पेड़ों को सर्दियों के दौरान इसके पत्ते के चारे के लिए भारी मात्रा में काटा जाता है जिसे "पाला" कहा जाता है। एक हेक्टेयर बेर/झरबेर से लगभग 125 किलोग्राम पाला प्राप्त हो सकता है। करड (डाइकैंथियम एनुलैटम) के अलावा सेवन (लिसिरस सिंडीकस), अंजन (सेंचरस सिलिएरिस) और धामन (सेंचरस सेटीगेरिस) जैसी बारहमासी घास प्राकृतिक चरागाहों, गोचर और रेंज भूमि में पाई जाती हैं और वर्षा आधारित परिस्थितियों में उच्च चारा की उपज देती हैं। यह गैर–कृषि योग्य बीहड़ भूमि के लिए सबसे उपयुक्त प्रणाली है।

बीहड़ों के लिए उपयुक्त बेल, बेर और आंवला आधारित चारागाह संयोजन बेल–करड़ (बेल–धामन (आंवला–धामन (बोरडी–धामन है। उत्पादक और अनुत्पादक बेर के पेड़ों के बीच अलग–अलग घास की प्रजातियाँ उगाने के परिणाम अलग–अलग रिपोर्ट के साथ दर्शाया गया हैं। राजस्थान के रेतीले चरागाहों पर बेर आधारित चारागाह अध्ययनों से पता चला है कि सेंचरस सिलियारिस–जिजिफस मॉरिटियाना प्रणाली ने 1.2 टन/हेक्टेयर चारा पैदा किया और फलों की पैदावार को प्रभावित नहीं किया। पश्चिमी राजस्थान की बंजर भूमि के लिए धामन घास के साथ बेर एक परीक्षित बागवानी–चरागाह प्रणाली है। पैडॉक (चरागाह भूमि) पर मूल्यवान जानकारी एकत्र की गई है जो खराब भूमि के प्रबंधन पर सकारात्मक सुराग प्रदान कर सकती है।

4. बागवानी–कृषि–चारागाह प्रणाली

बागवानी कृषि–चारागाह का तात्पर्य मौसमी खेत की फसलों और चारा घासों के साथ फल फसलों के एक साथ एकीकरण से है। हालांकि, प्रत्येक घटक का अनुपात किसान की प्राथमिकताओं और जरूरतों के आधार पर अलग–अलग होगा। उदाहरण के लिए, यदि पशुधन एक प्रमुख और पसंदीदा आजीविका है, तो किसान बेर–ड्रमस्टिक–घास या बेर–कैर–घास या बेर–पीलू–घास के रूप में फसल प्रणाली में विविधता लाने का विकल्प चुन सकते हैं। ये प्रणालियाँ फलों के साथ कई चारे के स्रोत प्रदान करती हैं। बेर, पीलू, घास और मोरिंगा के पत्ते मुख्य चारा हैं और घास चारा भी प्रदान करती है। फसल मॉडल को विशेष रूप से कम उत्पादन अवधि के दौरान जड़ व्यवहार, फलने की अवधि और भोजन सह चारा मांग को ध्यान में रखते हुए गंभीर रूप से समायोजित किया जाना चाहिए। मॉडल में चुने गए फसल–चारागाह घटक उत्पादकता बढ़ाने और उच्च शुद्ध लाभ उत्पन्न करने के लिए सहक्रियात्मक रूप से परस्पर क्रिया कर सकते हैं। जब चारा घास को बेर के पौधों के साथ–साथ बबूल के पेड़ के साथ उगाया गया, तो चारा उपज और बीज उत्पादन घास के अकेले उगाने से प्राप्त उपज से अधिक था। इसी तरह जब ए. टॉर्टिलिस, बेर के पौधे और बाजरा और ग्वार को एक ही भूमि इकाई में उगाया गया, तो लकड़ी के घटक की छत्रछाया में चारा और अनाज उत्पादन पर ज्यादा असर नहीं पड़ा। लाभ : लागत अनुपात की गणना उपज के थोक बाजार मूल्यों के आधार पर की गई थी।

4. भविष्य पर जोर

भौतिक रूप से क्षरित भूमि के लिए बागवानी भूमि उपयोग प्रणाली विकसित करने के लिए अपर्याप्त प्रयास किए गए हैं। संभावित रूप से उत्पादक बीहड़ भूमि को फलों की खेती के अंतर्गत लाने के विभिन्न अवसरों को ध्यान में रखते हुए, इस क्षेत्र में एक केंद्रित और ठोस प्रयास की योजना बनाने की आवश्यकता है।

उपोष्णकटिबंधीय फलों, औषधीय और सुगंधित पौधों के लिए मौजूदा आनुवंशिक सामग्री की जांच के माध्यम से बेहतर जीनोटाइप की खोज एक सतत प्रक्रिया होनी चाहिए जो परिवर्तनशील जैव–भौतिक तनाव स्तरों के लिए उपयुक्त हो। व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण और कम उपयोग की जाने वाली फल प्रजातियों में काफी अप्रयुक्त आनुवंशिक परिवर्तनशीलता मौजूद है। पहचाने गए जीनोटाइप का उपयोग लक्षित फल प्रजातियों के लिए समर्पित प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से तनाव सहिष्णु और उच्च उपज देने वाली किस्मों को विकसित करने के लिए किया जा सकता है। बेल, आंवला, कैर, कैंथ, सीताफल और करोंदा जैसी कम उपयोग की गई कठोर फलों की प्रजातियाँ बीहड़ पारिस्थितिकी तंत्र के लिए विशिष्ट स्थान रखती हैं इसलिए इनके लिए अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता हैं।

संसाधन उपयोग दक्षता, उत्पादन स्तर को बढ़ाने और फसल विफलताओं के जोखिम को कम करने के लिए स्मार्ट कृषि तकनीक विकसित करने की भी आवश्यकता और गुंजाइश है। इसमें उच्च गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री, बेहतर रोपण तकनीक, लागत प्रभावी रोग और कीट प्रबंधन और वैज्ञानिक सिंचाई और पोषक तत्व प्रबंधन विकसित करना शामिल है। स्थान विशिष्ट संरक्षण उपायों और फ्लोर मैनेजमेंट सिस्टम को अपनाना कम निवेश और टिकाऊ फल आधारित प्रणाली विकसित करने की कुंजी है। प्रतिनिधित्व बेंचमार्क स्थान में मॉडल फल आधारित प्रणाली स्थापित करने से प्रबंधन के मुद्दों की पहचान करने और अनुशंसित समाधानों को ठीक करने में मदद मिलेगी।

छोटी जोत वाली इकाइयों के लिए गहन रूप से प्रबंधित बहु–स्तरीय बागवानी प्रणाली की संभावना तलाशी जा सकती है, जिससे औषधीय और सुगंधित पौधों के साथ फलों के पेड़ों के सहक्रियात्मक एकीकरण के माध्यम से संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि हो सकती है।

बागवानी भूमि उपयोग को बढ़ावा देने में अक्सर अनुभव की जाने वाली प्रमुख बाधाओं में से एक अपर्याप्त और अनिश्चित विपणन अवसर हैं, इस मुद्दे को फल उत्पादकों की सहकारी समितियों की स्थापना के माध्यम से प्रभावी ढंग से निपटा जा सकता है। ऐसी सहकारी समितियाँ विपणन जोखिम को कम करने और बेहतर विपणन रणनीतियों को विकसित करने के लिए फल उत्पादकों को संगठित करने के लिए परिष्कृत कटाई के बाद प्रसंस्करण इकाइयों पर बातचीत करने में सुविधा प्रदान कर सकती हैं।

❋❋❋

फेरोमोन व लाइट ट्रैप : रबी फसलों के सच्चे प्रहरी

रत्नाकर पाठक एवं हिमेन्द्र राज रघुवंशी
स्कूल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज, कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, कोटा (राजस्थान)

भारत में गेहूँ, जौ, चना, मसूर, सरसों, मटर, अलसी और मैथी जैसी रबी फसलें किसानों की आय और खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन इन पर तना छेदक, फली छेदक, माहू, थ्रिप्स, इल्ली और पेंटेड बग जैसे कीटों का प्रकोप गंभीर नुकसान करता है। पहले किसान कीटनाशकों पर अधिक निर्भर रहते थे, जिससे पर्यावरण प्रदूषण, लाभकारी कीटों की कमी और प्रतिरोधी कीटों की समस्या बढ़ी। इसीलिए एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) की आवश्यकता महसूस हुई, जिसमें यांत्रिक, सांस्कृतिक, जैविक और सीमित रासायनिक उपायों का संतुलित उपयोग किया जाता है। इनमें फेरोमोन ट्रैप और लाइट ट्रैप दो प्रभावी, सस्ते और पर्यावरणळअनुकूल साधन हैं।

ट्रैप्स की कार्यप्रणाली

1. फेरोमोन ट्रैप (Pheromone Trap)

कार्यप्रणाली

1. इसमें कीट की मादा द्वारा उत्सर्जित यौन गंध (pheromone) का कृत्रिम रूप होता है।
2. यह गंध नर कीटों को आकर्षित करती है।
3. नर कीट जाल में फँस जाते हैं, जिससे उनका प्रजनन चक्र टूट जाता है और अंडों की संख्या घट जाती है।
4. यह फली छेदक (Helicoverpa armigera), तना छेदक (Chilo partellus), कपास के कीट, गन्ने के कीट आदि पर प्रभावी है।

उपयोग की विधि

1. लगाने की संख्या

- खेत कीट निगरानी के लिए : प्रति हेक्टेयर 5–6 ट्रैप।
- नियंत्रण के लिए : प्रति हेक्टेयर 10–12 ट्रैप।

2. लगाने की ऊँचाई :

- ट्रैप को फसल की छत्रक (canopy) की ऊँचाई पर या उससे थोड़ा ऊपर (1 से 1.5 मीटर) लगाया जाता है।
- जैसे–जैसे पौधों की ऊँचाई बढ़ती है, ट्रैप की ऊँचाई भी समायोजित करनी चाहिए।

3. लगाने का समय :

- फसल बोने के 20–25 दिन बाद से ही ट्रैप लगाना चाहिए।
- इससे कीटों की प्रारंभिक निगरानी हो जाती है और प्रकोप बढ़ने से पहले नियंत्रण किया जा सकता है।

4. लुभाने वाला फेरोमोन ल्यूअर :

- इसे 15–20 दिन में बदलना चाहिए क्योंकि इसकी गंध धीरे–धीरे कम हो जाती है।

फेरोमोन ट्रेप (Pheromone Trap)

2. लाइट ट्रैप (Light Trap)

कार्यप्रणाली

1. कई कीट रात्रिचर (रात में सक्रिय) होते हैं और प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं।
2. लाइट ट्रैप में तेज प्रकाश (15–20 वॉट का CFL या LED बल्ब) लगाया जाता है।
3. बल्ब के नीचे पानी या तेल लगी तश्तरी / बर्तन रखा जाता है।
4. कीट प्रकाश की ओर खिंचकर तश्तरी में गिर जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
5. यह पतंगे, इल्ली, दीमक, भुनगे, हॉपर्स आदि को नियंत्रित करता है।

उपयोग की विधि

1. लगाने की संख्या :

- प्रति गाँव या खेत के 2–3 हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 1 लाइट ट्रैप पर्याप्त है।

2. लगाने की ऊँचाई :

- बल्ब को जमीन से 1.5–2 मीटर की ऊँचाई पर रखना चाहिए।

लाइट ट्रेप (Light Trap)

3. समय :

- यह शाम से सुबह तक चलाना चाहिए, विशेषकर मानसून और खरीफ मौसम में।
- अधिक प्रभाव तब होता है जब आस–पास अन्य रोशनी न हो।

4. रख–रखाव :

- पानी / तेल रोज बदलना चाहिए।
- बल्ब साफ रखना जरूरी है।

दोनों ट्रैप्स के फायदे

1. कीटों की प्रारंभिक पहचान और निगरानी।
2. कीटों की आबादी का अनुमान लगाने में मदद।
3. रासायनिक कीटनाशकों की खपत कम होती है।
4. पर्यावरण और लाभकारी कीटों के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित।

फेरोमोन ट्रैप नर कीटों को गंध से और लाइट ट्रैप उन्हें प्रकाश से आकर्षित कर नष्ट करते हैं, जिससे फसल की सुरक्षा, कीटों की निगरानी और रसायन की बचत होती है।

आइए जाने फेरोमोन ल्यूअर क्या है?

1. ''ल्यूअर'' का अर्थ होता है लुभाने वाला पदार्थ।
2. यह एक छोटा कैप्सूल, रबर सेप्टा (rubber septa), पॉलिमर ट्यूब, या बायोडिग्रेडेबल डिस्क के रूप में तैयार किया जाता है, जिसमें मादा कीट द्वारा उत्सर्जित यौन गंध (sex pheromone) का कृत्रिम रसायन भरा होता है।
3. यह गंध खेत में नर कीटों को दूर से आकर्षित करती है।

मुख्य विशेषताएँ

1. आकर्षण क्षमता :

- नर कीट गंध के कारण ल्यूअर लगे ट्रैप की ओर खिंचते हैं।
- ट्रैप में पहुँचने पर वे फँस जाते हैं।

2. आयु (Life Span) :

- सामान्यत: एक ल्यूअर 15ळ30 दिन तक प्रभावी रहता है।
- इसके बाद गंध (फेरोमोन) की तीव्रता कम हो जाती है, इसलिए समय–समय पर बदलना आवश्यक है।

3. कीट–विशिष्ट (Species-specific) :

- हर कीट का अलग–अलग ल्यूअर बनाए जाते हैं जैसे :
- Helicoverpa armiger (फली छेदक)
- Spodoptera litura (तम्बाकू इल्ली)
- Chilo partellus (मक्का तना छेदक)
- Scirpophaga incertulas (धान का तना छेदक)

4. पर्यावरण अनुकूल :

- इनमें कोई विषाक्तता नहीं होती।
- लाभकारी कीट, परागण करने वाले कीट और मनुष्यों को कोई हानि नहीं होती।

फेरोमोन ल्यूअर

उपयोग की विधि

ल्यूअर को कीटों को आकर्षित करने हेतु फेरोमोन ट्रैप के अंदर स्थापित किया जाता है।

फायदे

1. कीटों की प्रारंभिक पहचान और निगरानी।
2. प्रजनन चक्र में बाधा डालकर कीट जनसंख्या घटाना।
3. कीटनाशक उपयोग कम करना।
4. पर्यावरण के लिए सुरक्षित और जैविक खेती में उपयोगी।

फेरोमोन ल्यूअर छोटे कैप्सूल / रबर सेप्टा होते हैं जिनमें मादा कीट की गंध भरी होती है, जो नर कीटों को आकर्षित करके ट्रैप में फँसाती है, और इनका प्रभाव 15–30 दिन तक रहता है।

रबी फसलों में उपयोग

1. **गेहूँळजौ :** दीमक, तना छेदक व पत्ती खाने वाले कीटों पर लाइट ट्रैप प्रभावी।
2. **चना, मसूर, मटर :** फली छेदक, थ्रिप्स व माहू की निगरानी व नियंत्रण में फेरोमोन ट्रैप उपयोगी।
3. **सरसों :** माहू, तना छेदक व पेंटेड बग पर लाइट व फेरोमोन दोनों मददगार।
4. **अलसी व मैथी :** कैप्सूल बोरर, इल्ली और थ्रिप्स पर प्रभावी नियंत्रण।

IPM रणनीति में महत्व

फेरोमोन व लाइट ट्रैप, IPM की यांत्रिक विधियों में प्रमुख हैं। सांस्कृतिक उपाय (फसल चक्र, गहरी जुताई), जैविक उपाय (Trichogramma, एन.पी.वी., नीम उत्पाद) और सीमित रसायनों के साथ मिलकर ये :

1. कीटनाशकों की खपत कम करते हैं,
2. पर्यावरण और जैव विविधता की रक्षा करते हैं,
3. फसल की उपज व गुणवत्ता सुधारते हैं।

हालाँकि, इनकी कुछ सीमाएँ भी हैंळजैसे फेरोमोन ट्रैप खास कीटों पर ही असरदार होते हैं और लाइट ट्रैप में लाभकारी कीट भी मर सकते हैं।

भविष्य की संभावनाएँ

आधुनिक तकनीकें इन साधनों को और अधिक कारगर बना रही हैं, जैसे:

1. सौर ऊर्जा आधारित लाइट ट्रैप,
2. स्मार्ट फेरोमोन व नैनो टेक्नोलॉजी,
3. मोबाइल ऐप आधारित निगरानी।

निष्कर्ष

फेरोमोन और लाइट ट्रैप रबी फसलों के सच्चे प्रहरी हैं। ये कम खर्च में कीटों की पहचान, रोकथाम और नियंत्रण तीनों में मदद करते हैं। इनसे कीटनाशकों पर निर्भरता घटती है और पर्यावरण सुरक्षित रहता है। यद्यपि इनकी कुछ सीमाएँ हैं, लेकिन नियमित देखभाल और तकनीकी सुधार से ये IPM रणनीति के अभिन्न अंग बने रहेंगे और रबी फसलों को सुरक्षित रखने का टिकाऊ व लाभकारी विकल्प सिद्ध होंगे।

❋❋❋

GAJ CHANDRA POLYMERS PRIVATE LIMITED

JAIPUR, RAJASTHAN

SunproMaXX®

स्मार्ट किसान की पहली पसंद

UV STABILISED | 100% VERGIN MATERIAL | TRACTOR READY | LONG DURABILITY | HIGH CROP YEILD | WEED CONTROL | NO SOIL EROSION | SAVE WATER

मल्च फिल्म

25 माइक्रॉन
30 माइक्रॉन
50 माइक्रॉन
100 माइक्रॉन
150 माइक्रॉन

ड्रिप पाइप

एचडीपीई पाइप

पीवीसी पाइप

हमारे यहां कृषि से संबंधित सभी प्रकार के उपकरण मिलते हैं।

पॉन्ड लाइनर

300 माइक्रॉन
500 माइक्रॉन
1000 माइक्रॉन
1500 माइक्रॉन
2000 माइक्रॉन
3000 माइक्रॉन

स्प्रिंकलर सिस्टम

1200mm त्रिशूल
1500mm त्रिशूल
मिनी स्प्रिंकलर सेट

सब्सिडी मंजूर

संपर्क करें

+91 - 7230080250 Abhishek Sharma
+91 - 6375902900 Dhruve Sharma
gajchandrapolymers@gmail.com

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

दमदार जोड़ी

इफको नैनो डीएपी + इफको नैनो यूरिया प्लस

का वादा

लागत कम और लाभ ज्यादा

500 मिली बोतल मात्र ₹ 600/- में

500 मिली बोतल मात्र ₹ 225/- में

बीज उपचार : 5 मिलीलीटर प्रति किलोग्राम बीज

जड़ उपचार : 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर करें

स्प्रे : खड़ी फसल में बुवाई के 35-40 दिन बाद 2-4 मिलीलीटर मात्रा प्रति लीटर पानी मे घोलकर पत्तियों पर छिड़काव करें।

स्प्रे : 2-4 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर प्रति छिड़काव 500 मिलीलीटर मात्रा का दो बार 35-40 दिन पर दूसरा 55-60 दिन पर छिड़काव करें।

इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड, राजस्थान

राज्य कार्यालय : नेहरू सहकार भवन, तृतीय तल, भवानी सिंह रोड़, जयपुर (राज.) - 302001

स्वामी प्रकाशक : डॉ. प्रताप सिंह, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. प्रताप सिंह, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, प्रधान संपादक डॉ.प्रताप सिंह